गुरु नानक जयंती का पावन दिन... पूज्य बापूजी व पूर्णिमा व्रतधारियों का शुभागमन...
गुरु और गुरुभक्तों का सत्संग-संग पा रहे हैं अमृतसर (पंजाब) के पुण्यात्मा।

पूज्य बापूजी के सान्निध्य में रचनात्मकता, स्मरणशक्ति व सुषुप्त शक्तियों को जागृत करने में
अहम भूमिका रखनेवाली योग-शिक्षा पाने का सुअवसर प्राप्त हो रहा है बठिंडा (पंजाब) के नौनिहालों को।

वर्ष : १६ अंक : १५६ दिसम्बर २००५ मार्गशीर्ष-पौष, वि.सं.२०६२ मूल्य : रु. ६-००

ऋषि प्रसाद

इस अंक में

काम और प्रेम
पृष्ठ १६

चतुर्भुजी नारायण की लीला
पृष्ठ १८

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

अन्य देशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 80

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

मोक्षमार्ग के दुर्लभ साधन
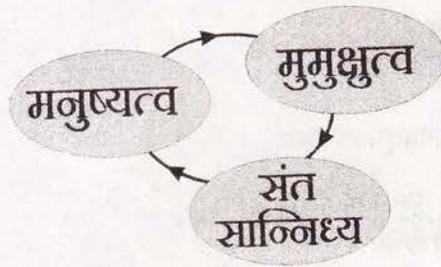
(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

श्री मद् आद्य शंकराचार्यजी कहते हैं :

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम् । मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः ॥

'भगवत्कृपा ही जिनकी प्राप्ति का कारण है वे मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व (मुक्त होने की इच्छा) और महान पुरुषों का संश्रय (सान्निध्य) - ये तीनों दुर्लभ हैं ।' **(विवेक-चूड़ामणि : ३)**

मनसा सीव्यति इति मनुष्यः ।

दो पैरवाला मनुष्य तो कहलाता है पर जो मन से उस चैतन्य परमात्मा के साथ संबंध जोड़ ले वही सच्चे अर्थ में मनुष्य है । गधा, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ला या संसार में उलझनेवाले भोगी व्यक्ति ने अपना मनुष्यता का अधिकार खो दिया है । जिसका मन परमात्मतत्त्व से, परमात्मज्ञान से, परमात्ममाधुर्य से जुड़ा है - ऐसे व्यक्ति को शास्त्रीय भाषा में मनुष्य कहा गया है ।

लाखों लोग आये और गये लेकिन मोक्ष की इच्छा नहीं थी बल्कि किसीकी कुछ इच्छा तो किसीकी कुछ... उनको वैसा फल मिला । परम कल्याण नहीं हुआ ।

आहारं निद्रा भयं मैथुनं च चतुर्भि ऐतद् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मः एकोऽधिकं नराणाम् ।

आहार लेना, नींद करना, मुसीबत आये तो भयभीत हो जाना और संसारी भोग भोगना - ये सब तो मनुष्य और पशु दोनों कर लेते हैं, पर एक धर्म, एक बड़ा भारी सद्गुण मनुष्य में है कि वह अपना मन परमात्मा में लगा सकता है । इसीसे मनुष्य में मनुष्यत्व आता है नहीं तो मनुष्य मनुष्य होते हुए भी द्विपाद पशु है ।

मनुष्यत्व आना, फिर मोक्ष की इच्छा होना यानी सब दुःखों से सदा के लिए छूटने की इच्छा, निर्बंध नारायण को पाने की इच्छा; जैसे किसीका गला पकड़कर उसे पानी में डुबाया जाय तो उस समय वह बाहर निकलने के सिवाय और कुछ नहीं चाहता है, ऐसे ही संसार के दुःखों से, बंधनों से, कष्टों से, मुसीबतों से, अज्ञानांधकार व जन्म-मरण के दुःखों से बाहर निकलने की, छूटने की इच्छा हो तो उसे मुमुक्षुत्व कहते हैं । तो मनुष्यत्व के साथ मुमुक्षुत्व भी हो कि इस जन्म-मरण के चक्कर से कैसे छूटें ? मुक्ति कैसे हो ? तब काम बन पाता है । मुक्ति की अगर तीव्र इच्छा है तो तीव्र मुमुक्षुत्व है, मंद इच्छा है तो मंद मुमुक्षुत्व है ।

तीसरी दुर्लभ चीज है - **महापुरुषसंश्रयः** अर्थात् महापुरुष का संग । महापुरुष का सान्निध्य

मिल सकता है परंतु मनुष्यता नहीं है तो दूर से ही देखकर चल देगा, उनके विषय में कुछ-न-कुछ निर्णायक बनके छुट्टी... महापुरुष धरती पर हों और मनुष्यत्व भी हो; जैसे - सज्जनता, दयालुता, परोपकारिता आदि गुण से युक्त हो परंतु मुमुक्षुत्व नहीं है तो वह महापुरुष का संपर्क नहीं करेगा। उसका जीवन एकांगी हो जायेगा, पूर्णता पर नहीं पहुँच पायेगा।

जिसमें मनुष्यत्व है वह आदर के योग्य है लेकिन मनुष्यत्व के साथ मुमुक्षुत्व नहीं होगा तो अपनी योग्यता, अपनी बुद्धि इस शरीर को खिलाने-पिलाने में, सुविधा व साधन जुटाने में खर्च हो जायेगी और जो काम करने यहाँ आये हो वह बाकी रह जायेगा। अगर ये तीनों चीजें साथ में हैं तो मुक्ति मुट्ठी में है, परमात्मप्राप्ति बायें हाथ का खेल है।

> *अष्टसिद्धि, नवनिधि और योगसामर्थ्य से सम्पन्न हनुमानजी भी आत्मपद पाने पर ही पूर्णता को प्राप्त हुए। श्रीकृष्ण के दर्शन के बाद भी जब तक अर्जुन ने आत्मपद नहीं पाया तब तक शोक, मोह से पार नहीं हुए, मुक्तता का अनुभव नहीं कर पाये।*

शरीर को चाहे कितना भी मान मिले, सुविधा मिले एक दिन तो वह जल ही जायेगा। मौत के बाद शरीर जला दिया जाय उसके पहले शरीर को चेतना देनेवाले चैतन्य परमात्मा को पाने की इच्छा पैदा हो जाय - मुमुक्षुत्व आ जाय तो कल्याण हो जाय।

बुद्ध अपने भिक्षुओं को अक्सर यह बात सुनाते थे : ''तुम जो यह अपने सामने लहराता सरोवर देख रहे हो, अगर तुम्हारे हर जन्म के आँसू इकट्ठे किये जायें तो यह सरोवर भी छोटा पड़ जायेगा, तुम इतने जन्मों से आँसू बहाते आये हो और अगर तुम्हारे अब तक के जन्मों के शरीरों की हड्डियाँ इकट्ठी की जायें तो सुमेरु पर्वत भी छोटा पड़ जाय, इतने युगों से तुम भटकते (जन्मते) आये हो।

हर जन्म में तुमने सोचा होगा, 'यह मकान मेरा है, यह दुकान मेरी है, ये मेरे सगे-संबंधी हैं' परंतु मृत्यु का एक झटका सब पराया कर देता है। इसलिए हे भिक्षुओ ! अब तुम मोक्षमार्ग का अवलंबन लेकर मुक्ति का अनुभव करो; जहाँ बंधन नहीं है, जिसे पाने के बाद फिर छीना नहीं जा सकता वह मोक्षसंपदा पाने का यत्न करो।''

यह जो शरीर मिला है वह छीन लिया जायेगा पर शरीर जाने के बाद भी तुम रहते हो। शरीर बनने के पहले भी तुम थे। जीवन में सुख-दुःख आते हैं। सुख-दुःख आने के पहले भी तुम रहते हो और सुख-दुःख चले जाने के बाद भी तुम रहते हो। सुख-दुःख आये व चले गये, उनको देखनेवाले हम हैं। हमारे में तो परिवर्तन नहीं आया। वह अबदल, शाश्वत, ज्ञानस्वरूप आत्मा हम हैं। उसको जानने की तीव्र इच्छा पैदा हो जाय, तीव्र मुमुक्षुत्व आ जाय तो कल्याण निश्चित है।

हमारे में करोड़ों-करोड़ों जन्मों के सूक्ष्म संस्कार हैं। चिरकाल के उन विपरीत संस्कारों को मिटाने के लिए अभ्यास की आवश्यकता है परंतु जिनका मनुष्यत्व पूरा खिला है, मोक्ष की इच्छा भी तीव्र है, ऐसे लोगों को महापुरुष मिल जायें तो उपदेशमात्र से काम बन जायेगा, वे ज्ञातज्ञेय हो जायेंगे।

मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः - ये तीन चीजें जिसमें आ जायें - वह जानने योग्य आत्मतत्त्व को जान लेगा, आत्मपद को पा लेगा।

वह आत्मपद कैसा है ? जहाँ पहुँचने पर दुःख की चोट नहीं लगती; भय, शोक स्पर्श नहीं करते, उसे कहते हैं आत्मपद। आत्मपद से बढ़कर कोई चीज नहीं है। अष्टसिद्धि, नवनिधि और योगसामर्थ्य से सम्पन्न हनुमानजी भी आत्मपद पाने पर ही पूर्णता को प्राप्त हुए। श्रीकृष्ण के दर्शन के बाद भी जब तक अर्जुन ने आत्मपद नहीं पाया तब तक शोक, मोह से पार नहीं हुए, मुक्तता का अनुभव नहीं कर पाये।

आत्मलाभात् परं लाभं न विद्यते।
आत्मसुखात् परं सुखं न विद्यते।
आत्मज्ञानात् परं ज्ञानं न विद्यते।

'आत्मलाभ से बढ़कर कोई लाभ नहीं है, आत्मसुख से बढ़कर कोई सुख नहीं है और आत्मज्ञान से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं है।' मनुष्यत्व है और साथ में तीव्र विवेक जग जाय कि यह मिल गया, यह भोग लिया, यह पा लिया, यहाँ तक पहुँच गया आखिर क्या ? शरीर तंदुरुस्त हो, पृथ्वी का राज्य मिल जाय और लोगों में वाहवाही हो परंतु कब तक ? मृत्यु का झटका लगेगा, सब छूट जायेगा। ऐसा तीव्र विवेक जब तक नहीं होता, तब तक मोक्ष की इच्छा भी नहीं होती।

यह संसार पानी पर नाचती तरंगों जैसा है, तरंगें सत्य नहीं हैं, वे सदा टिकती नहीं हैं, नित्य रहनेवाले जीवात्मा को अनित्य संसार और परिस्थिति कैसे पूर्णता दे सकती है ? फिर भी जहाँ सार है उधर कोई जाता नहीं। जहाँ सार नहीं है, सुख नहीं है वहाँ सुख ढूँढ़-ढूँढ़कर थक

गये परंतु सुख मिला नहीं और मर गये। एक-दो व्यक्ति की बात नहीं, सभीका यही हाल है। इसलिए तीव्र विवेकबुद्धि से मोक्ष की इच्छा जग जाय और फिर महापुरुष का संग मिल जाय तो शाश्वत सुख मिल जायेगा। कबीरजी ने कहा है :

भटक मुआ भेदु बिना पावे कौन उपाय।
खोजत खोजत युग गये पाव कोस घर आय॥

मनुष्य चाहता है कि मैं हमेशा सुखी रहूँ, कभी दुःखी न रहूँ। वह चाहता है शाश्वत सुख, अमर आत्मा का सुख परंतु खोजता है नश्वर चीजों में। जहाँ शाश्वत सुख है वहाँ तो आत्मारामी गुरुदेव का सान्निध्य, महापुरुषों का सान्निध्य ही ले जा सकता है परंतु मोक्ष की इच्छा होगी तभी महापुरुषों की बातें, आत्मारामी गुरुदेव की बातें अच्छी लगेंगी। वरना मोक्षदायी वातावरण मिले फिर भी मोक्ष की इच्छा नहीं है तो लाभ नहीं होगा।

मेरे गुरुदेव के चरणों में लाखों लोग आये और गये लेकिन मोक्ष की इच्छा नहीं थी बल्कि किसीकी कुछ इच्छा तो किसीकी कुछ... उनको वैसा फल मिला। परम कल्याण नहीं हुआ। परमात्मा से जुड़ने की योग्यता का निखार हो, परमात्मा को पाने की तीव्र इच्छा हो और परमात्मा से मिलानेवाला कोई मिल जाय - ये तीनों बातें बड़ी दुर्लभ हैं। इसलिए मोक्षमार्ग का पथिक बनने के लिए आप सदा उत्सुक रहें। कोई भी कर्म करें, विचारपूर्वक करें कि यह करने से क्या भगवान के रास्ते बढ़ पायेंगे ? भगवत्शांति मिलेगी ? भगवान की प्राप्ति होगी ? मुक्ति मिलेगी ?

वसिष्ठजी कहते हैं : ''हे रामजी ! तुम भी महापुरुषों के मार्ग पर चलो। वह मार्ग परम पावन है, आपदाओं से रहित और सात्त्विक है। तब तुम आपदा के समुद्र में न डूबोगे। वे जैसे खेद से रहित जगत में विचरते हैं वैसे ही तुम विचरो।''

वसिष्ठजी जैसे महापुरुष भी श्रीरामजी को महापुरुषों का आश्रय ले उनके बताये मोक्षमार्ग पर चलने के लिए कहते हैं। हमें भी शीघ्रातिशीघ्र महापुरुषों का आश्रय लेकर उनके निर्दिष्ट मार्ग अनुसार मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व को तीव्र बनाके मुक्तिलाभ पा लेना चाहिए, अपना परम कल्याण कर लेना चाहिए।

मुझमें राम तुझमें

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

अमेरिका में 'शेयर-केयर' नाम की संस्था चली थी। उसमें बड़े अच्छे लोग थे। 'आपके पास जो धन है उसमें गरीबों का 'शेयर' (हिस्सा) है, उनकी तुम 'केयर' लो (ध्यान रखो)।' - यह उनका सिद्धांत था। अच्छे लोग 'शेयर-केयरवालों' को दान दिया करते थे।

गरीब लोगों को सस्ती डबल रोटी मिले इसलिए शेयर-केयरवालों ने डबल रोटी की 'न लाभ-न हानि' में बेकरियाँ खोलीं। स्वार्थी लोगों ने देखा कि इनका सेवाकार्य बहुत चलता है तो उन लुच्चों ने बेकरीवाले नौकरों को पटाकर आटे में, डबल रोटी-बिस्कुट में ब्लेड के टुकड़े एवं आलपिनें डलवा दीं।

लोग डबल रोटी खायें तो उसमें ब्लेड के टुकड़े और आलपिनें निकलें। फिर उन स्वार्थी असामाजिक तत्त्वों ने मीडिया का उपयोग कर फिल्म उतार ली और टी.वी. में दिखा दिया कि 'शेयर-केयरवालों की डबल रोटी में आलपिनें और ब्लेड के टुकड़े निकलते हैं।' इस प्रकार जुल्म करके शेयर-केयरवालों की संस्था बंद करवा दी।

इस तरह उन्हींके देश के लोगों ने ही उन्हें ठगा। ऐसे ही स्वार्थी लोग धर्म को भी बड़े ही सुनियोजित तरीके से बदनाम करते हैं। धर्म के नाम पर झगड़े होते हैं ऐसी बात नहीं है, स्वार्थ के कारण ही अनर्थ होते हैं। धर्म अनर्थ नहीं करता, न ही करवाता है। धर्महीन, धर्म को न समझनेवाले लोग, कर्म की गति को न समझनेवाले लोग झगड़े करवाते हैं।

सच बात तो यह है, जो आदिवासी-भील हैं, वे सनातन सत्य के प्रेमी हैं। जो पहले माताजी को मानते थे, हनुमानजी को मानते थे, वे ही धर्मांतरण करवानेवाले स्वार्थी तत्त्वों के भ्रामक प्रचार से प्रभावित होकर बाद में कहते हैं : 'हम ईसाई हैं।' और हमारे ही भाई भील-भील आपस में लड़ते हैं बेचारे ! लड़ाई तो छोटी-मोटी होती है किंतु अखबारों में, टी.वी. में ऐसा-ऐसा प्रचार होता है कि मानों, हिंदुस्तानी लोग बड़े खराब हैं। विदेशों में भी ऐसा प्रचार हो रहा है। इस प्रकार राई का पर्वत कर देते हैं।

आदिवासियों का इतिहास आप पढ़ें तो दंग रह जायेंगे ! एक भील महाराणा प्रताप से कहता है : ''महाराज ! बड़े दुःख के दिन आ रहे हैं। अब क्या करेंगे ?''

महाराणा : ''तुम चले जाओ।''

''आप तो भारत की अस्मिता के लिए घास की रोटी खाकर जी रहे हैं और मैं आपको छोड़कर चला जाऊँ ? महाराज ! मैं आपका सेवक हूँ। मैंने आपकी रोटी खायी है। आपका राम और

राम, सबमें राम समाया है...

मेरा राम एक ही तो है। हम हमारे राम के नाम पर, धर्म के नाम पर प्राण दे देंगे; पीठ क्यों दिखायेंगे ?''

शबरी के बेर रामजी ने खाये हैं, निषाद को रामजी ने गले लगाया है - यह दुनिया जानती है। यह आदिवासी या भील जाति कोई परायी नहीं है, बाहर से नहीं आयी। ये हमारे ही भाई हैं किंतु स्वार्थी लोगों ने इन्हें हमसे अलग करके इनमें विकृत संस्कार भर दिये हैं। जहाँ अंधा स्वार्थ होता है वहाँ ऐसा हो जाता है और जहाँ तटस्थता होती है वहाँ अच्छाई होती है।

मैं तो बख्तू देवी को धन्यवाद दूँगा। वह अपने बेटे से कहती है : ''बेटा ! यह अल्लाह का रास्ता है और यह काफिरों का रास्ता है - ऐसा नहीं; रास्ता एक ही है।

एक नूर ते सब जग उपजा कौन भले कौन मंदे ?

लाइल्लाह इल्लिल्लाह... 'अल्लाह के सिवाय कोई नहीं' तो काफिरों से नफरत करना भी अल्लाह की तौहीन करना है न।''

वह बेटा मुल्ला-मौलवियों के पास भी जाता और साधु-संतों के पास भी जाता। उसको राम कहने में कोई सिकुड़ान नहीं होती।

अब्दुल सतार बड़ौदा (गुज.) के आस-पास के थे। जब वे एक महीने के थे उनकी माँ मर गयी और कुछ ही समय में पिता ने भी खुदाताला का रास्ता ले लिया। अनाथ अब्दुल घूमते-भटकते किसी संत के सत्संग में पहुँच गये, वहाँ भगवन्नाम-कीर्तन से रस मिला।

सत्संगी लोग दयालु होते हैं। अनाथ बालक को भोजन कराना हिन्दुओं के लिए आनंद की बात है।

अब्दुल सतार संत के यहाँ रहते, सत्संग सुनते, सेवा करते। ऐसा करते-करते उन्होंने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया, नाम रखा गया सतारदास।

सतारदास ने साधना की, कुछ गुरुप्रसादी पचायी और थोड़े प्रसिद्ध हुए तो मुल्ला-मौलवी उनको बहकाने लगे : ''आ जाओ अपने मजहब में। तुम काफिरों के साथ रहके यह क्या करते हो ?''

सतारदास : ''मेरा वह भरम भाग चुका है कि मैं फलाने मजहब का हूँ। सबमें एक परमात्मा और परमात्मा में सब है।''

मजहबवादी अपना उल्लू सीधा करने के लिए निर्दोष प्रजा को लड़ाते हैं। संतों के चित्त में तो कोई अपना-पराया नहीं होता। वे तो कहते हैं :

मुझमें राम तुझमें राम सबमें राम समाया है।
कर लो सभीसे प्यार जगत में कोई नहीं पराया है।
एक ही माँ के बच्चे हम सब एक ही पिता हमारा है।
फिर भी ना जाने किस मूरख ने लड़ना हमें सिखाया है।
मुझमें राम तुझमें राम सबमें राम समाया है।

भगवान करे कि आपस में लड़ानेवाले षड्यंत्रकारियों से हमारा देश बचे, हमारे देशवासी बचते रहें... भगवान षड्यंत्रकारियों को भी सद्‌बुद्धि दें... भगवान ने सद्‌बुद्धि देने के लिए ही शास्त्र बनाये हैं, भगवान तो सद्‌बुद्धि देना चाहते हैं किंतु कोई नहीं लेता तो भगवान क्या करें ?

भगवान तू किधर है...

प्रभु को बुलाओ प्रेम से
और नित्य नेम से।
वो आयेगा जरूर
है जो हाजरा हजूर ॥
तुमने कब बुलाया
और वो नहीं आया।
हुआ ऐसा अगर है तो
तेरे बुलाने में कसर है ॥
वो दाता है योगक्षेम का
पर भूखा है प्रेम का।
शब्दों के बहाने
चले हैं उसको रिझाने ॥
दो आँसु प्रेम के बहाओ
उसे प्रेम से बुलाओ।
आओ प्रभु ! अब तो आओ !
प्रेमास्पद अब प्यास बुझाओ ॥
कहीं थक न जायें
मार्ग से तेरे बहक ना जायें।
तेरा मेरा साथ का सफर है
भक्त हूँ तेरा भगवान तू किधर है ?
सच्चिदानंद मुझमें तेरा ही असर है।
बूँद हूँ आनंद की तू आनंद का सागर है ॥

– जीवन सिंह राजपूत, अमदावाद।

जीवनरथ उन्नति की ओर...

अपने जीवन को उत्तरायण की तरफ अर्थात्
ऊपर की तरफ, प्रकाश की तरफ,
ज्ञान की तरफ ले जाने का संकल्प करें।

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

उत्तरायण के प्रभात से देवताओं का ब्राह्ममुहूर्त आरंभ होता है। परा-अपरा साधना के सिद्धिकाल का आरंभ भी उत्तरायण से माना जाता है। देवताओं के ब्राह्ममुहूर्त - उत्तरायण के बाद सारे शुभ कर्म, सिद्धि देनेवाले कर्म किये जाते हैं।

तुम्हारे छः महीने बीतते हैं तब देवताओं का एक दिन होता है और फिर से छः महीने बीतते हैं तो देवताओं की एक रात होती है।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥

'जिस मार्ग में ज्योतिर्मय अग्नि अभिमानी देवता है, दिन का अभिमानी देवता है, शुक्लपक्ष का अभिमानी देवता है और उत्तरायण के छः महीनों का अभिमानी देवता है, उस मार्ग में मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता योगीजन उपर्युक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले जाये जाकर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।' **(श्रीमद्भगवद्गीता : ८.२४)**

भीष्म पितामह का शरीर बाणों से छिद गया था, बाण ही उनकी शैया बन गये थे। उन्होंने देखा, 'अभी सूर्य दक्षिणायन में है अर्थात् मृत्यु के लिए यह उत्तम समय नहीं है।' इसलिए उत्तरायण की बाट देखते-देखते भीष्म पितामह ५८ दिन तक शरशैया पर पड़े रहे।

भीष्मजी को उनके पिता शान्तनु ने वरदान दिया था कि 'जब तक तू नहीं चाहेगा तब तक मृत्यु तुझे नहीं ले जा सकेगी।'

उत्तरायण की बाट देखना - यह नियम सभी लोगों के लिए लागू नहीं पड़ता। जो यहीं पर ब्रह्म-परमात्मा को जानकर, जो ब्रह्माजी का अनुभव है उसे अपना बना लेते हैं, उनके लिए उत्तरायण-दक्षिणायन कुछ नहीं रहता। साधारण आदमी के लिए भी उत्तरायण-दक्षिणायन कुछ नहीं रहता।

जो लोक-लोकांतर में अपने इष्ट के पास जाना चाहते हैं या स्वर्ग में जाना चाहते हैं उनके लिए भी इसका विशेष आकर्षण नहीं रहता किंतु जो ब्रह्मलोक में जाना चाहते हैं, ब्रह्मज्ञान के संस्कार हैं - ऐसे पुरुष मरने के बाद उत्तरायण मार्ग से रवाना होते हैं।

जो उत्तरायण में देह त्यागते हैं, अग्नि के अधिष्ठाता देव उस जीव को अपनी सीमा तक ले जाते हैं। उनकी सीमा पूर्ण होते ही दिन के देवता को जीव सौंप दिये जाते हैं। उनको दिन के अधिष्ठाता देव अपनी सीमा तक ले जाते हैं, फिर उनको शुक्लपक्ष के अधिष्ठाता देव को सौंप देते हैं। शुक्लपक्ष के अधिष्ठाता देव उत्तरायण के अधिष्ठाता देव को सौंप देते हैं। उत्तरायण के अधिष्ठाता देव उनको ब्रह्मलोक में पहुँचा देते हैं। जब तक ब्रह्माजी की सृष्टि रहती है, तब तक वे ब्रह्मलोक में खूब सुख भोगते हैं। जब प्रलय होने लगता है तब उनको आखिरी जो थोड़े-से उपदेश की आवश्यकता है वह ब्रह्माजी देते हैं और उनके ब्रह्म-परमात्मा में विलय होने का अवसर आता है।

आज उत्तरायण का पावन दिन है। आपका जीवनरथ भी उत्तरायण की ओर, उन्नति की ओर अग्रसर हो - यही शुभकामना है।

जो बीत गयी सो बीत गयी,
तकदीर का शिकवा कौन करे ?
जो तीर कमान से निकल गया,
उस तीर का पीछा कौन करे ?

घर में या कहीं भी मनमुटाव हो गया हो; आपकी सास है, बहू है, ननद है, बेटी है, आपका भाई है, पड़ोसी है, आपके साथ उसका खट्टा, खारा व्यवहार हो गया तो आपस में क्षमा माँग लें । क्योंकि जिस समय उसने आपसे बुरा व्यवहार किया, उस समय उसका मन जितना बुरा था क्या सतत उतना बुरा रहता होगा ? अथवा आपने भी आवेश में आकर किसीसे बुरा व्यवहार किया, उस समय मन में जैसा बुराई का वेग था, क्या वैसा आप सतत रखते हैं ?

नहीं। ये बदलनेवाले विकार हैं तो आप इनको याद करके गाँठ न बाँधें । बदलनेवाले विकारों को अपने ऊपर हावी न होने दें। इनकी नींव आप गहरी न उतारें। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि अपने मन के दोष आप ही निकालें। जैसे, ईर्ष्या का दोष है तो आज के दिन संकल्प करें कि ईर्ष्या के शिकार नहीं होंगे। ईर्ष्या करनेवाला अपना ही विनाश करता है। जिसके प्रति ईर्ष्या है वह तो अभी नाश्ता करता होगा, हँसता-खेलता होगा, उसे याद करके अपने दिल को क्यों जलायें ? अपने जीवन को उत्तरायण की तरफ अर्थात् ऊपर की तरफ, प्रकाश की तरफ, ज्ञान की तरफ ले जाने का संकल्प करें।

● *हमें एक माली की तरह अपने जीवनरूपी पौधे को विकास की ओर ले चलना चाहिए। यह हमारा परम कर्तव्य है।*

● *हमें इस मनुष्य-जीवन में अपनी सम्पूर्ण उन्नति के लिए प्रयास करना चाहिए। घास-फूस की तरह अपना जीवन नहीं छोड़ देना चाहिए कि इसका चाहे जो कुछ हो जाय।*

विद्यार्थी भविष्य निर्माण शिविर

विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास चाहनेवाले परम पूज्य बापूजी के निर्देशानुसार विद्यालयों की गर्मियों की छुट्टी के समय (मई-जून २००६ में) भारत के प्रमुख 'संत श्री आसारामजी आश्रमों' में ५-५ दिनों के ६ 'विद्यार्थी भविष्य निर्माण शिविर' लगाये जायेंगे।

शिविर के मुख्य उद्देश्य :

☞ आज के स्पर्धात्मक युग में सफल, कार्यकुशल व तेजस्वी बनने की कला सिखाना।

☞ स्वास्थ्य, बुद्धिशक्ति व एकाग्रता वर्धक यौगिक प्रयोगों का प्रशिक्षण देना।

☞ माता-पिता का आदर व आज्ञापालन जैसे उच्च संस्कार देना।

☞ भारतीय संस्कृति के पवित्र संस्कारों का सिंचन करना।

☞ जीवन में विलक्षण उन्नति प्राप्ति हेतु सुषुप्त शक्तियाँ जगाने के यौगिक प्रयोग कराना।

☞ व्यक्तित्व के विकास के लिए रचनात्मक खेलों एवं प्रतियोगिताओं का आयोजन करना।

छात्र-छात्राओं के लिए अलग-अलग शिविर लगाये जायेंगे । शिविर में विद्यार्थियों को प्रशिक्षण देनेवाले अध्यापकों, प्राध्यापकों व 'बाल संस्कार केन्द्रों' के संचालकों को परम पूज्य बापूजी के सान्निध्य में आयोजित जनवरी-२००६ की 'उत्तरायण ध्यान योग शिविर' में प्रशिक्षित किया जायेगा।

इन शिविरों में सेवा देने के इच्छुक सेवाधारी भाई-बहनें तथा शिविर में भाग लेने के इच्छुक छात्र-छात्राएँ स्थानीय संत श्री आसारामजी आश्रम व आश्रम की समितियों से सम्पर्क करें।

मुख्यालय :
अखिल भारतीय श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, अमदावाद (गुज.)-३८०००५.
फोन : २७५०५०१०-११.
E-mail : ashramindia@ashram.org

परिप्रश्नेन...

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

जब चीज और आदमी का ख्याल छोड़कर हमारा मन इस ओर लगता है कि हम सुखी-दुःखी होने में स्वतंत्र हैं, वहाँ से अध्यात्म की साधना प्रारम्भ होती है।

प्रश्न : भगवच्चिंतन के बिना एक भी श्वास व्यर्थ न जाय, इसके लिए क्या करें ?

उत्तर : रात्रि को सावधानी से सोऽहं का जप करते हुए सो जायें। सुबह उठने पर श्वासोच्छ्वास में सोऽहं को देखें। श्वास अंदर आता है तो 'सो' को देखें, श्वास बाहर आता है तो उसमें 'हं' को देखें। 'सोऽहं, हंसो...' इस प्रकार अजपा जप हमेशा चलता ही रहता है किंतु बुद्धि मोटी हो गयी, इसलिए हमें पता नहीं चलता। रात्रि को दस मिनट तक 'ॐ' का दीर्घ गुंजन करके ही सोयें। ऐसे ही सुबह भी 'ॐ' का गुंजन करें तो 'ॐ' या 'सोऽहं' का मानसिक जप बढ़ जायेगा। धीरे-धीरे ऐसी आदत पड़ जायेगी कि होंठ, जीभ नहीं हिलें और हृदय में जप चलता रहे व मन उसके अर्थ में गमन करता रहे। फिर जप करते-करते उसके अर्थ में ध्यान लगने लगेगा।

सुमिरन ऐसा कीजिये, करे निशाने चोट। मन ईश्वर में लीन हो, हले न जिह्वा होंठ॥

आगे की ऐसी ऊँची स्थिति आ जाती है

प्रश्न : भगवान में प्रीति कैसे बढ़े व विषय-विकार कैसे मिटें ?

उत्तर : गुरुभक्तों का संग, 'ईश्वर की ओर' पुस्तक का पठन, मनन व चिंतन तथा नियमित रूप से संध्या करने से भगवान में प्रीति बढ़ेगी और विषय-विकार भी मिटेंगे।

प्रश्न : कुण्डलिनी शक्ति कैसे जगायें ?

उत्तर : कुण्डलिनी शक्ति जगाने के चक्कर में मत पड़ो। जगानेवाला मौजूद रहेगा तो मेहनत ज्यादा करनी पड़ेगी। शिविर में आते रहो और शांत भाव से बैठकर एकाग्रचित्त हो सत्संग सुनो। रेलगाड़ी में बैठ गये, फिर दौड़ने की चिंता नहीं करते। रेलगाड़ी खुद ही दौड़ती है। इसलिए तुम कुण्डलिनी जगाने की चिंता मत करो। शिविर के दिनों में वातावरण में ही कुण्डलिनी शक्ति जगाने के लिए शक्तिपात कर दिया जाता है। तुम जगाओगे क्या, खुद ही जग जायेगी। तुम जगाओगे तो खतरा हो सकता है। जैसे बच्चा दौड़ने का प्रयास करे तो गिर सकता है किंतु बाप ने हाथ पकड़ लिया तो... ऐसे ही इधर गुरुभक्ति से सीधे परमात्मा की गोद में आ जाते हैं।

प्रश्न : दम (बाह्य इंद्रियनिग्रह) कैसे आयेगा ? इसका उपाय क्या है तथा यह क्यों आवश्यक है ?

उत्तर : जीवन में कोई-न-कोई व्रत, नियम होता है तो दम आता है। दम के लिए व्रत, नियम का होना अत्यंत आवश्यक है।

जिसके जीवन में दम है वह आदमी सोचता है तो उसे सही सूझबूझ भी आ जाती है। जिसके जीवन में दम नहीं है, उसके जीवन में कोई बरकत नहीं आती। जीवन में दम होने से मनोबल बढ़ेगा, बुद्धिबल का भी विकास होगा और उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने की सत्प्रेरणा भी मिल जायेगी।

संत की विलक्षण दवा

एक पति-पत्नी प्रायः आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे। एक दिन पत्नी एक संत के पास गयी और श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके बोली : ''महाराज! मेरे पति का स्वभाव बहुत चिड़चिड़ा है। वे जब-तब मुझसे झगड़ते ही रहते हैं और इस तरह हमारी बनी रसोई बेकार चली जाती है। हमारे बीच झगड़ा न हो ऐसी कृपा कीजिये।''

संत बोले : ''मैं तुम्हें एक दवा देता हूँ। जब तुम्हारे पति तुमसे झगड़ें तब तुम उस दवा को अपने मुँह में रख लेना, वे थोड़ी देर में ही चुप हो जायेंगे।''

संत ने एक बोतल में दवा भरकर दे दी। महिला ने पति के क्रोध के समय दो-तीन बार उस दवा की परीक्षा की और बड़ी प्रसन्नता के साथ जाकर उन संत से कहा : ''महाराज! आपकी दवा तो बड़ी अचूक है। उसमें क्या-क्या चीजें पड़ती हैं, कृपया बता दीजिये, ताकि मैं भी बनाकर रख लूँ।'' संत ने कहा : ''बेटी! बोतल में जल के सिवा और कुछ भी नहीं था। कार्य तो तुम्हारे मौन ने किया है। मुँह में पानी भरा रहने से तुम बदले में बोल नहीं सकी और तुम्हें शांत पाकर तुम्हारे पति का क्रोध भी जाता रहा।''

शब्दों में अचिंत्य शक्ति है, उनका उपयोग बहुत सोच-विचारकर करना चाहिए। बीता हुआ समय, कमान से निकला हुआ तीर और जिह्वा से निकला हुआ शब्द लौटकर वापस नहीं आता।

एक मौन बहुत दुःख हरे, बोले नहीं तो गुस्सा मरे।

मौन केवल साधक के लिए ही नहीं, गृहस्थ के लिए भी आवश्यक है। निरर्थक बोलने से न केवल उच्छृंखलता का प्रदर्शन होता है बल्कि अनेक समस्याओं की भी उत्पत्ति होती है। औचित्यपूर्ण बोलना आवश्यकता है और अनावश्यक बोलना विडम्बना है। विवाद के प्रसंग में मौन की उपयोगिता बहुत अधिक बढ़ जाती है। अनेक अवस्थाओं में बोलने की अपेक्षा न बोलने का मूल्य अधिक है। वाणी का विवेक व्यक्ति का सुरक्षा-कवच है। जो वाणी पर नियंत्रण रखना जानता है वह विवाद के शिकंजे से बच जाता है। शब्दों में अचिंत्य शक्ति है, उनका उपयोग बहुत सोच-विचारकर करना चाहिए। बीता हुआ समय, कमान से निकला हुआ तीर और जिह्वा से निकला हुआ शब्द लौटकर वापस नहीं आता। तलवार का वार बाहरी घाव करता है, जो भर जाता है, परंतु कड़वे शब्दों की चोट हृदय पर घाव करती है, जो शीघ्र नहीं भरता। वस्तुतः शब्दों की शक्ति को पहचानना चाहिए। जाने-अनजाने किसीके लिए भी चुभनेवाली बात नहीं कहनी चाहिए। बोलने से पहले विवेकपूर्ण मति से विचारिये, अन्यथा चुप रहिये। नित्य प्रयास से हम मौन रहने का स्वभाव बना सकते हैं। मौन रहनेवाले व्यक्ति का प्रभाव सामनेवाले पर प्रायः गंभीर व्यक्ति के रूप में पड़ता है। उसमें अंतर्मुखता के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसा व्यक्ति जब कुछ कहता है तो लोग उसे ध्यान से सुनते हैं। मौन रहनेवाले व्यक्ति में आत्म-विश्लेषण की प्रवृत्ति बढ़ती है। उसमें परिणामदर्शी मनोवृत्ति का विकास होता है। उसमें सम्यक् चिंतन, निर्णयशक्ति और कार्य करने की क्षमता भी आ जाती है। ऐसे व्यक्ति न केवल स्वयं समाधान पाते हैं बल्कि दूसरों को भी समाधान की राह दिखाते हैं। बोलने से शक्ति क्षीण होती है। सफलता के इच्छुकों को शक्ति का संचय करना चाहिए न कि अपव्यय। मौन आंतरिक तप है। मौन मनुष्य को अंतर की गहराइयों में ले जाता है। मौन के क्षणों में अंतर के नवीन रहस्य उद्घाटित होते हैं। मौन श्रेष्ठ साधना है, जिसे अपनाकर मनुष्य बाह्य एवं आंतरिक शांति पाने में सफल हो जाता है।

प्रश्न : मोक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर : सारे बंधनों से सदा के लिए मुक्ति को मोक्ष कहते हैं।

प्रश्न : बंधन क्या है ?

उत्तर : जन्मदुःखं जरादुःखं जायदुःखं पुनः पुनः। अन्तकाले महादुःखं तस्मात् जाग्रहि जाग्रहि ॥

जन्म का दुःख, बुढ़ापे का दुःख, व्याधि का दुःख और मौत का दुःख - ये बंधन हैं। ये चार बंधन अमीर, गरीब, दुःखी, सुखी सबको बाँधते हैं। मर गये तो... फिर भी बंधन रहता है। नरक या स्वर्ग में जाओ, प्रेत होकर भटको या वृक्ष हो जाओ - यह बंधन ही तो है।

महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

(गतांक से आगे)

प्रह्लादजी द्वारा भगवान की स्तुति

'हे नाथ ! ये समस्त ब्रह्मादि देवतागण, जो आपके क्रोध से भयभीत हो रहे हैं, आपकी सत्त्वमूर्ति के ही आज्ञाकारी, उपासक एवं भक्त हैं - ये देवगण, हम असुरों के समान वैरभाव से विरक्त भक्त नहीं हैं, ये तो आपके रुचिर (मनोहर) अवतार की लीलाओं को विश्व के कल्याण के लिए श्रद्धापूर्वक देखते हैं, संसार को भय दिलाने के लिए नहीं । अतः इन देवताओं के भय-निवृत्यर्थ हे भगवन्! आप अपने क्रोध को शांत करें। जिस असुर को मारने के लिए यह क्रोध था, वह तो मारा गया। अब क्रोध का क्या प्रयोजन है ? अतएव इसे त्यागने की कृपा कीजिये । आपके द्वारा इस असुर के मारे जाने से सज्जनों को उसी प्रकार संतोष हुआ है, जिस प्रकार दूसरे प्राणियों को कष्ट देनेवाले विषपूर्ण बिच्छू और सर्प के वध से साधुजन प्रसन्न होते हैं । अपने क्रोध से संसार-भयकारी असुर का वध करके आपने लोगों के भय को दूर किया है। अतएव अब इस क्रोध को भयहारी मानकर भी धारण करने की आवश्यकता नहीं है। आपके इस नृसिंह-रूप का स्मरण ही लोगों की भय-निवृत्ति हेतु पर्याप्त है। अतः क्रोध शांत कर इन देवताओं के भय को दूर कीजिये। हे भगवन् ! हे अजित ! मैं आपके अति भयानक मुख, विद्युत के समान लपलपाती हुई जीभ, प्रचण्ड सूर्य के समान नेत्र, कुटिल भृकुटी और उग्र डाढ़ों को देखकर भयभीत नहीं हूँ। दैत्यराज की आँतों की इस रुधिराक्त माला के धारण से, रुधिर से भीगे हुए बालों से, खड़े हुए कानों से, सभी दिशाओं को कम्पायमान करनेवाले आपके गर्जन-तर्जन से तथा शैल-शिखर विदारक भयंकर नखों से मुझे नाममात्र का भय नहीं है । हे भक्तवत्सल ! मैं तो इस दुःसह संसाररूपी क्रूर चक्र के भय से भयभीत हूँ। संसार का दुःख मुझसे सहन नहीं हो रहा है । भगवन् ! इस संसार में जहाँ देखता हूँ वहीं चारों ओर हिंसक जीवों ने डेरा डाल रखा है। मैं अपने कर्मों के बंधन में बँधा हुआ भी आपसे विनय करता हूँ कि हे श्रेष्ठतम ! आप अपने चरणों की शरणागतिरूपी मोक्ष देकर मुझे अपने समीप कब बुलायेंगे ? इस संसार में प्रिय के वियोग और अप्रिय के संयोग अर्थात् जन्म-मरणादि शोकरूपी अग्नि से जलता हुआ मैं नाना योनियों में भ्रमण

करने के दुःख से बचने के लिए ही आपके दास्ययोग को चाहता हूँ। हे भूमन् ! मुझे अपनाइये। हे नाथ ! आपके दास्ययोग को प्राप्त कर लेने पर ये सांसारिक विघ्न मेरा कुछ नहीं कर सकेंगे। ब्रह्मादि देवताओं द्वारा प्रशंसित आपकी कृपा से आपके दास्ययोग द्वारा मैं उन समस्त विघ्न-बाधाओं को तर जाऊँगा। यदि आप कहें कि 'संसार के दुःखों को मिटाने के लिए संसार ही में उपाय भी तो हैं, फिर तुम दास्ययोग क्यों चाहते हो'- तो मेरी विनती यही है कि सांसारिक दुःखों को मिटाने के उपाय संसार में वस्तुतः आत्यंतिक नहीं हैं, जो हैं वे क्षणिक हैं अथवा मिथ्या-भासमात्र हैं। बालकों के रक्षक उनके माता-पिता के होते हुए भी बालक दुःखी देखे जाते हैं। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो अजीगर्त के समान पिता ही वधिक भी देखे जाते हैं। रोगियों के लिए औषधियाँ दुःखनिवारक मानी जाती हैं, किंतु वस्तुतः वे भी कुछ नहीं हैं क्योंकि भाँति-भाँति की औषधियाँ करने पर भी रोगियों की मृत्यु होती हुई देखी जाती है। मनुष्यों को समुद्र में नौका, जहाज शरण हैं किंतु नौका और जहाज के साथ भी मनुष्य डूबते हुए देखे जाते हैं। अतएव हे नाथ ! ये सांसारिक उपाय क्षणिक हैं और अनिश्चित हैं। आपकी शरणागति, आपका दास्ययोग दृढ़ और आत्यंतिक उपाय है। हे भगवन् ! कदाचित् कहीं किसी कारणवश यदि कोई रक्षक के रूप में दिखायी पड़ता है तो वह आपसे भिन्न कोई दूसरा नहीं है। पिता आदि अर्वाचीन या ब्रह्मादि प्राचीन कर्ता के रूप में जो दिखलायी पड़ते हैं, वे आपके ही स्वरूप हैं, आपके ही रूपों का रूपांतरमात्र है। जिसमें, जिस निमित्त से, जिसके द्वारा, जिसके लिए, जिस हेतु से, जो कुछ कार्य पुरुष करता है वे सब आप ही के स्वरूप हैं, इसमें संदेह नहीं। हे अज ! आपकी अनुमति से ही आपके अंश, पुरुष के मन को आपकी माया कालचक्र से प्रेरित होकर उत्पन्न करती है। वह मन कर्ममय, बलवान, दुर्जय और वेदोक्त कर्मप्रधान माया के वशीभूत होकर उसके भोग के लिए षोडशविकाररूपी आरोंवाला संसार चक्रात्मक है और बड़ा ही दुस्तर है। अतएव आपसे पृथक् रहकर अर्थात् आपको न भजते हुए दास्यभाव से रहित होकर उस बली मन को कौन नियंत्रित कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं। हे नाथ ! आप अपने परम धाम की चित्रूपी शक्ति से सदा विजयी हैं। आपने अपने बुद्धिगुण को विजय किया है और मायाप्रेरित काल के कार्यों को अपने वश में रखा है। अतएव जैसे ईख पेरते समय किसान उसको खींचता है, उसी प्रकार आप मुझको अपनी ओर खींचें। यदि आप कहें कि संसार से क्यों इतना घबराते हो, अपने पिता का राज्य भोगो और लोकपालों के भोगों का भोग करो तो यह ठीक नहीं। मैंने देखा है कि जिन लोकपालों के ऐश्वर्य, सम्पदा, विभव, आयु आदि मेरे पिता के प्रसन्न होने से बनते और क्रोध करने से क्षणभर में बिगड़ते थे, उनके भोग कुछ भी नहीं हैं। जिन हमारे पिताजी के ये सब अधीन थे, आपने क्षणभर में ही उनको नष्ट कर दिया है। अतएव मैं जान-बूझकर ही उस काल-कवलित ब्रह्मादि देवताओं से लेकर साधारण जन के भोगों को भी नहीं चाहता। मैं तो केवल आपकी दासता चाहता हूँ। कृपया आप मुझे अपने समीप बुलाइये। कहाँ तो कानों को सुख देनेवाले मृगतृष्णा के समान आशीर्वचन और कहाँ संपूर्ण रोगों का उद्भव-स्थान यह शरीर। फिर भी बड़े-बड़े विद्वान भी इस संसार में कामना से विरत नहीं होते। यह भी आपकी माया का जाल ही है। बड़े-बड़े विद्वान कामरूपी दावानल को नाममात्र के सुखबिन्दु से शमन करने में व्यग्र हैं और आपकी शरणागति के लिए अवकाश नहीं पाते। यह भी आश्चर्यमयी आपकी माया ही है और कुछ नहीं।

> ***इस संसार में जहाँ देखता हूँ वहीं चारों ओर हिंसक जीवों ने डेरा डाल रखा है। मैं अपने कर्मों के बंधन में बँधा हुआ भी आपसे विनय करता हूँ कि हे श्रेष्ठतम ! आप अपने चरणों की शरणागतिरूपी मोक्ष देकर मुझे अपने समीप कब बुलायेंगे ?***

हे नाथ ! कहाँ इस तामस प्रधान असुरकुल में मेरा जन्म और कहाँ आपकी यह परम कृपा ? जिस करकमल को आपने ब्रह्माजी के सिर पर कभी नहीं रखा, महादेवजी के सिर पर भी नहीं रखा और न जगन्माता साक्षात् रमा के ही मस्तक पर रखा है, उसी करकमल को प्रसन्नतापूर्वक आप मेरे सिर पर फेरते हैं, इससे अधिक कृपा और क्या हो सकती है ? यद्यपि अपने-पराये की बुद्धि जैसी मनुष्यों में होती है, वैसी आपमें नहीं है। आप तो सारे संसार के अहैतुक हितू (हितैषी, सुहृद) हैं, तथापि आप पर-अवर-बुद्धि से नहीं, कल्पवृक्ष के समान सेवा के अनुसार शुभ फल देते हैं, इसमें संदेह नहीं। हे भगवन् ! आपके परम भक्त महर्षि नारदजी ने संसाररूपी महासर्प से ग्रसित भवकूप में परितप्त मुझको अपनाया है और अपनी कृपा से कृतार्थ किया है फिर मैं कैसे आपके दासों की सेवा का परित्याग करूँ ? (क्रमशः)

वासना, प्रीति और

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

वास्तव में ईश्वर को पाना या सुखी होना कठिन नहीं है परंतु इच्छाओं के कारण, संस्कारों के जाल के कारण हम ईश्वर से, सुख से अपने को दूर महसूस करते हैं और इस कारण हमारी योग्यता का पता हमें नहीं चलता।

इच्छाएँ और वासनाएँ ही हमें दीन-हीन बना रही हैं, वे ही हमें अपनी महिमा से नीचे गिरा देती हैं। हम जितना-जितना बाहर की चीजों की इच्छा महसूस करते हैं, जितने-जितने हम भोग की वासना से मलिन हो जाते हैं उतने हम प्रकृति के दास होते हैं और जितने हम निर्वासनिक होते हैं प्रकृति उतना हमारे अनुकूल होने लगती है।

वासना क्यों उठती है ?

जो नश्वर है, अनित्य है, उसमें हमारी नित्य बुद्धि, शाश्वत बुद्धि है; जो स्वप्न जैसा संसार है उसको सच्चा समझने की बेवकूफी करते हैं, अतएव संसार के नश्वर व्यवहारों के प्रति, नश्वर भोगों के प्रति हमारी आस्था (वासना) जग जाती है और हम अपनी महिमा से च्युत हो जाते हैं।

स्वप्न जैसे संसार में सत्य बुद्धि होती है तो कुछ करके, कुछ पाकर, कहीं जाकर हम सुखी होने के लिए मजदूरी करते हैं । इससे हमारी जो असलियत है उस पर परतें चढ़ जाती हैं । यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जो बात बार-बार कही जाती है वह सत्य लगने लगती है । अगर सौ बार किसी झूठ को दुहराया जाय तो झूठ भी सत्य लगने लगता है।

जाति बिल्कुल झूठी है किंतु परतें चढ़ायी गयीं कि 'तुम पटेल हो, तुम बनिया हो, तुम अग्रवाल हो, तुम सिंधी हो, तुम्हारा यह कर्तव्य है आदि आदि' और इन परतों से तुम सम्मोहित हो जाते हो।

भूल्या जभी आपनूँ तभी हुआ खराब... अपने आपको हम भूल जाते हैं; अपनी ही शक्ति से परतों के प्रभाव से हम इतने दब जाते हैं कि हमारे सिवा और सब रह जाता है, हम ही खो जाते हैं।

आपका वास्तविक स्वरूप परात्पर ब्रह्म है; जो श्रीकृष्ण का, श्रीराम का, शिवजी का स्वरूप है वही आपका स्वरूप है। वासनाओं की तरंगें इतनी बह रही हैं कि आपको पता ही नहीं कि आप कितने महान हो!

वासना, प्रीति और जिज्ञासा जिसमें रहती है उसको जीव कहते हैं। देखकर, सूँघकर, चखकर, सुनकर, स्पर्श करके मजा लेने की जो इच्छा है उसे वासना कहते हैं, वासना संसार की चीजों की होती है और इंद्रियजन्य सुखों के बिना जो सुखी होने की इच्छा है उसे प्रीति कहते हैं, प्रीति परमात्मा से होती है।

प्रेमास्पद ईश्वर में प्रीति होगी तो अंदर का सुख उभरेगा। फिर जिज्ञासा होगी कि बिना देखे, बिना भोगे अंदर जो सुख मिल रहा है वह कहाँ से आता है ? रात को गहरी नींद में चले गये, कुछ खाया-पीया नहीं, फिर भी गहरी शांति है - वह शांति कहाँ से आती है ? ध्यान का सुख मिलता है तो कहाँ से मिलता है ? मन क्या है, बुद्धि क्या है ? परमात्मा क्या है ? इस प्रकार की जिज्ञासा उठेगी और जिज्ञासा की पूर्ति होते ही पता चलेगा कि जीवात्मा तथा परमात्मा एक है। फिर वह जीव जीव नहीं रहता, शिव हो जाता है। इसलिए कहते हैं कि आत्मा सो परमात्मा। भगवान श्रीकृष्ण ने भी कहा है :

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

(गीता : १५.७)

जैसे घड़े का आकाश महाकाश का अविभाज्य अंग है, ऐसे ही आत्मा परमात्मा का अविभाज्य अंग है। जीव वासना को महत्त्व न दे और प्रीति को प्राप्त करे तो जिज्ञासा की पूर्ति हो जाती है। जीव को अपनी असलियत का पता चल जाता है कि जैसे ईश्वर अमर हैं ऐसे मैं भी अमर आत्मा हूँ। जैसे ईश्वर ज्ञानस्वरूप हैं ऐसे मैं भी ज्ञानस्वरूप हूँ। जैसे ईश्वर नित्य हैं ऐसे मैं भी नित्य हूँ। जैसे ईश्वर को दुःख छू नहीं सकते ऐसे ही मुझे भी दुःख छू नहीं सकते । दुःख शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि प्राकृतिक चीजों को होता है, मुझ चैतन्य को नहीं। मैं तो

जिज्ञासा

अरे ! जूते-चप्पल, गहने-कपड़ों को अपना मान लेते हो, यदि भगवान को अपना मान लो तो आपकी प्रीति भगवान के साथ जुड़ जायेगी और काम बन जायेगा ।
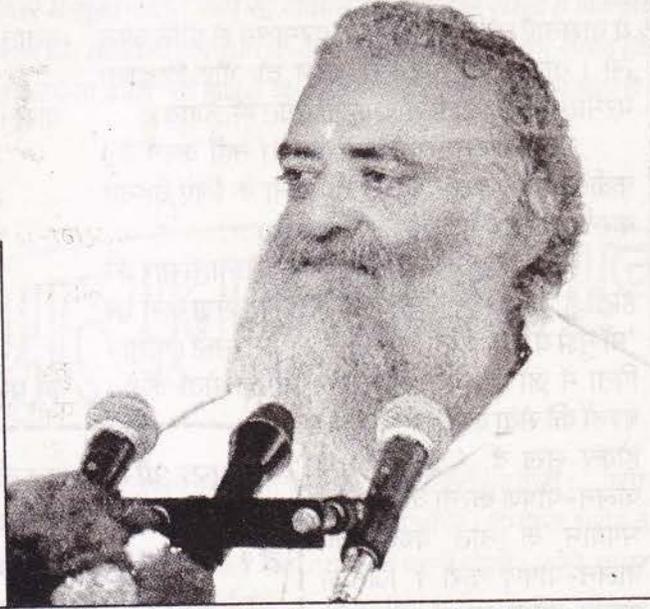
ज्योतियों का ज्योति हूँ ; न जानने को भी जानता हूँ, जाननेवाले मन-इन्द्रियों को भी जाननेवाला हूँ।

ॐ आनंद... ॐ शांति...

जीव का अपना आपा सुखस्वरूप है फिर भी कमबख्त वासना के कारण अंतःकरण से तादात्म्य हो गया । 'मैं इधर जाऊँ, इससे मिलूँ, इससे सीखूँ...' दुनिया का सीख-सीखकर, दुनिया का पा-पाकर तो कई लोग तबाह हो गये । वासना में प्रीति कर-करके तो कई तबाह हो गये । जैसा मन में आये ऐसा कर-करके तो कई खप गये । फिर अनेक योनियों में भटके, कई माताओं के गर्भ में लटके...

हलकी वासना होने से जीव दुरात्मा हो जाता है, अच्छी वासना होने से धर्मात्मा हो जाता है किंतु वासना जब प्रीति में बदल जाती है तो वह परमात्मा का भक्त हो जाता है । अब आप पूर्ण भक्त, ज्ञानी जैसा जीवन जीना चाहते हो या विषय-विकारों का, परिस्थितियों का दास होकर खपना चाहते हो - यह आपके हाथ की बात है । आप जिसको सहयोग दोगे वहीं की यात्रा होगी । गुरु और ईश्वर की कृपा से अज्ञान मिटता है । अज्ञान मिटते ही अपने को ब्रह्म से, परमात्मा से विभक्त होने की भूल मिटते ही वह पूर्ण भक्त हो जाता है । पूर्ण भक्त अपने पूर्ण स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, भेद में भी अभेद का रस, भेद में भी अभेद का ज्ञान उसको स्वाभाविक हो जाता है।

रोज सुबह उठकर संकल्प करो : 'हमें दुरात्मा का नहीं, धर्मात्मा और महात्माओं का सुख पाना है । भागकर, मरकर कहीं जाना नहीं है, जीते-जी लोहा लेना है; परिस्थितियों के सिर पर पैर रखकर, वासना को हटाकर प्रियतम को पाना है । हरिॐ... हरिॐ... अनंत ब्रह्मांडनायक परमेश्वर मेरे साथ हैं । भगवान मेरे हैं और मैं भगवान का हूँ।'

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

जीवात्मा परमात्मा का अविभाज्य अंश है । जैसे चाँद का प्रतिबिंब चाँद की खबर है, ऐसे ही परमात्मा का प्रतिबिंब परमात्मा की खबर है । जैसे प्रलय होने पर, संसार का नाश होने पर भी परमात्मा वैसे-के-वैसे ही रहते हैं, ऐसे ही शरीर का नाश होने पर जीव भी वैसे-का-वैसा ही रहता है । इसीलिए तो कर्म का फल भोगने के लिए जन्मता-मरता है । अगर शरीर के नाश के साथ जीवात्मा का नाश हो जाय तो पाप-पुण्य का फल कौन भोगेगा ?

जीव परमात्मा का अंश है । जैसा बाप वैसा बेटा, जैसा बीज वैसा वृक्ष । वृक्ष में बीज छुपा है और बीज में वृक्ष छुपा है । ऐसे ही जीव में ब्रह्म छुपा है और ब्रह्म में जीव छुपा है, ऐसा तुम्हारा व ब्रह्म का संबंध है पर दुर्भाग्य यह है कि वासना के अनुसार मन में जैसा आया वैसा करने लगे, इसीसे कंगाल रह गये । कोई धन से कंगाल, कोई ज्ञान से कंगाल, कोई शांति से कंगाल... यह सारा संसार कंगालखाने की खबर दे रहा है।

'ये भोगूँ... ये करूँ... यहाँ जाऊँ... वहाँ जाऊँ...' -

ये वासनाएँ छोड़कर प्रेमास्पद परमात्मा से प्रीति जोड़ लो । वासना को प्रीति में बदल दो और जिज्ञासा परमात्मा की करो तो सारी कंगालियत मिट जाय।

संत लोग तुमसे ज्यादा मेहनत नहीं करते हैं । फर्क केवल इतना है कि तुम वासना के लिए मेहनत करते हो और वे प्रीति के लिए करते हैं।

प्रीति भगवान से होती है और वासना संसार की होती है। माता की सेवा करो, पिता की सेवा करो पर 'माँ मुझे ये दे दे, पिता से ये ले लूँ...' ऐसा नहीं। माता-पिता में जो परमेश्वर है उसके निमित्त सेवा करो । बच्चों की सेवा करो परंतु 'बच्चे बड़े होकर सुख दें...' इस भाव से पालन-पोषण करना वासना है। भगवान के नाते बच्चों का पालन-पोषण करो । जिनको अपना बच्चा मानते हो उनसे ममता हटा दो, नहीं तो बच्चे मनमानी करेंगे तो दुःख होगा। पराये बच्चों से ममता करो तो प्रीति हो जायेगी।

एक माई ने बच्चे के रोने की आवाज सुनी। वह आटा गूँधना छोड़ दौड़ती हुई आयी किंतु देखकर चली गयी क्योंकि पड़ोसी का बच्चा रो रहा था, उसका अपना बच्चा नहीं । यदि पड़ोसी के बच्चे को अपना मानकर उठा लेती तो प्रीति हो जाती। 'सारे शरीरों में मेरा परमेश्वर है, उनको भी सुख दूँ' - ऐसा भाव प्रीति ले आता है एवं प्रीति परमात्मा से मिला देती है। कठिन नहीं है, अटपटा नहीं है बिल्कुल सरल, सहज है प्रीति करना।

गुरु और ईश्वर की कृपा से अज्ञान मिटता है। अज्ञान मिटते ही अपने को ब्रह्म से, परमात्मा से विभक्त होने की भूल मिटते ही वह पूर्ण भक्त हो जाता है। पूर्ण भक्त अपने पूर्ण स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, भेद में भी अभेद का रस, भेद में भी अभेद का ज्ञान उसको स्वाभाविक हो जाता है।

लोग मंदिर में जाते हैं, भगवान के आगे हाथ जोड़ेंगे और कहेंगे **त्वमेव माता च पिता त्वमेव...** फिर जूते हैं कि नहीं यह देखते हुए कहेंगे **त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव** । फिर भगवान की तरफ देखेंगे व कहेंगे **त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव...** और परिवार की तरफ देखकर कहेंगे **त्वमेव सर्वं मम देव देव॥**

जहाँ प्रीति की जगह है वहाँ भी स्वार्थ और ममता प्रीति नहीं करने देती । अरे ! जूते-चप्पल, गहने-कपड़ों को अपना मान लेते हो, यदि भगवान को अपना मान लो तो आपकी प्रीति भगवान के साथ जुड़ जायेगी और काम बन जायेगा। प्रीति जगाने के लिए संत उपाय बताते हैं :

१. इस लोक और परलोक का मजा लेने की वासना को हटाओ।

२. नियम-पालन में आलस्य मत करो।

३. मन के कहने में न चलो।

४. सात्त्विक भोजन करो।

५. प्रत्येक कर्म विचारपूर्वक करो।

६. सर्वदा सत्कार्यों में व्यस्त रहो।

वासना को निवृत्त किया जा सकता है, जिज्ञासा को पूर्ण किया जा सकता है, प्रीति को प्रेमास्पद में मिलाया जा सकता है । आपमें प्रीति करने की शक्ति है परंतु वह वासना में चली जाती है, आप ठगे जाते हैं । अपना मित्र, अपनी जाति, अपना धर्म, अपनी पार्टी... जिसको आप अपना मानते हो उसके प्रति आपको प्यार हो जाता है।

दुर्भाग्य की बात यह है कि जो आपका पहले नहीं था, बाद में नहीं रहेगा और अभी भी नहीं की तरफ जा रहा है उसको आप अपना मानने की गलती करते हो। किसीका मकान गिर जाय तो आपको उतनी पीड़ा नहीं होगी जितनी अपना मकान टूटने पर होगी। वही अपना मकान आपने दो दिन पहले बेच दिया व बाद में बारिश के कारण मकान बैठ गया तो आप खुश होंगे कि अपने को तो पैसे मिल गये... मकान तो गिरा पर अपनत्व हटा तो दुःख नहीं होता है।

नश्वर चीजों को अपना मानते हो तो उनसे बँध जाते हो। ऐसे ही ईश्वर को अपना मानो और उससे बँध जाओ तो बेड़ा पार हो जाय।

व्यवहार में शरीर के संबंध से अपना भाई, अपनी बहन आदि मानना ठीक है पर अंदर से समझना कि जिससे मेरा भाई, मेरी बहन, मेरा घर मेरा लगता है वह चैतन्य परमेश्वर मेरा है । किसीको दोस्त माना तो उसमें गुणों का भंडार दिख रहा है। किसी बात पर वह अड़ गया, दुश्मनी हो गयी, अब उसमें सारे दुर्गुण दिख रहे हैं। जहाँ प्रीति थी वहाँ गुण दिख रहे थे, जहाँ द्वेष आ गया वहाँ दुर्गुण दिखने लगे किंतु अच्छाई-बुराई जिससे दिखती है उस परमेश्वर में प्रीति हो जाय तो उसकी मुलाकात हो जाय।

घर-परिवार में सुख-शांति बनी रह सकती है। यह तभी संभव है जब जीवन में सत्संग हो, भारतीय संस्कृति के उच्च संस्कार हों, धर्म का सेवन हो। जीवन का ऐसा कौन-सा क्षेत्र है जहाँ सत्संग की आवश्यकता नहीं है ?

श्री अखंडानंदजी सरस्वती

सत्संग का प्रभाव

एक पिता-पुत्र व्यापार-धंधा करते थे। पुत्र को पिता के साथ कार्य करते हुए वर्षों बीत गये, उसकी उम्र भी चालीस को छूने लगी। फिर भी पुत्र को पिता न तो व्यापार में स्वतंत्रता देते थे और न ही तिजोरी की चाबी। पुत्र के मन में यह बात सदैव खटकती थी। वह सोचता, 'यदि पिताजी का यही व्यवहार रहा तो मुझे व्यापार में कुछ नया करने का कोई अवसर नहीं मिलेगा।' पुत्र के मन में छुपा क्षोभ एक दिन फूट पड़ा। दोनों के बीच झगड़ा हुआ और संपदा का बँटवारा हो गया। पिता-पुत्र दोनों अलग हो गये। पुत्र अपनी पत्नी-बच्चों के साथ रहने लगा। पिता अकेले थे, उनकी पत्नी का देहांत हो चुका था। उन्होंने किसी दूसरे को सेवा के लिए नहीं रखा क्योंकि उन्हें किसी पर विश्वास नहीं था। वे स्वयं ही रूखा-सूखा भोजन बनाकर खा लेते या कभी चने आदि खाकर ही रह जाते तो कभी भूखे ही सो जाते थे।

उनकी पुत्रवधू बचपन से ही सत्संगी थी। वह संत-महापुरुषों के दर्शन करने जाती और आदर से सत्संग सुनती थी। जब उसे अपने श्वसुर की ऐसी हालत का पता चला तो बड़ा दुःख हुआ, आत्मग्लानि भी हुई। उसमें बाल्यकाल से ही धर्म के संस्कार थे, बड़ों के प्रति आदर व सेवा का भाव था। उसने अपने पति को मनाने का प्रयास किया परंतु वे न माने। पिता के प्रति पुत्र के मन में सद्भाव नहीं था। अब पुत्रवधू ने एक विचार अपने मन में दृढ़ कर उसे कार्यान्वित किया। वह पहले पति व पुत्र को भोजन कराकर क्रमशः दुकान और विद्यालय भेज देती, बाद में स्वयं श्वसुर के घर जाती। भोजन बनाकर उन्हें खिलाती और रात्रि के लिए भी भोजन बनाकर रख देती। कुछ दिनों तक ऐसा ही चलता रहा। जब उसके पति को पता चला तो उसने पत्नी को ऐसा करने से रोकते हुए कहा : ''ऐसा क्यों करती हो ? बीमार पड़ जाओगी। तुम्हारा शरीर इतना परिश्रम नहीं सह पायेगा।'' पत्नी बोली : ''मेरे आदरणीय श्वसुरजी भूखे रहें, तकलीफ पायें और हम लोग आराम से खायें-पीयें, यह मैं नहीं देख सकती। मेरा धर्म है बड़ों की सेवा करना, इसके बिना मुझे संतोष नहीं होता। उनमें भी तो मेरे भगवान का वास है। मैं उन्हें खिलाये बिना नहीं खा सकती। भोजन के समय उनकी याद आने पर मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं। उन्होंने ही तो आपको पाल-पोसकर बड़ा किया है, तभी आप मुझे पति के रूप में मिले हैं। आपके मन में कृतज्ञता का भाव नहीं है तो क्या हुआ, मैं उनके प्रति कैसे कृतघ्न हो सकती हूँ ?''

पत्नी के सुंदर संस्कारों ने, सद्भाव ने पति की बुद्धि पलट दी। उन्होंने जाकर अपने पिता के चरण छुए, क्षमा माँगी और उन्हें अपने घर ले आये। पति-पत्नी दोनों मिलकर पिता की सेवा करने लगे। पिता ने व्यापार का सारा भार पुत्र पर छोड़ दिया। परिवार के किसी भी व्यक्ति में सच्चा सद्भाव है, मानवीय संवेदनाएँ हैं, सुसंस्कार हैं तो वह सबके मन को जोड़ सकता है, घर-परिवार में सुख-शांति बनी रह सकती है। और यह तभी संभव है जब जीवन में सत्संग हो, भारतीय संस्कृति के उच्च संस्कार हों, धर्म का सेवन हो। जीवन का ऐसा कौन-सा क्षेत्र है जहाँ सत्संग की आवश्यकता नहीं है ? सत्संग जीवन की अत्यावश्यक माँग है क्योंकि सच्चा सुख जीवन की माँग है और वह सत्संग से ही मिल सकता है।

सो जानब सतसंग प्रभाऊ।
लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥
(श्रीरामचरित. बा.कां. : २.३)

प्रेम न खेतों ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा चहो प्रजा चहो, शीष दिये ले जाय॥

काम और प्रेम

काम और प्रेम में तिनकेभर का ही फर्क है पर काम विनाश की तरफ ले जाता है, प्रेम अविनाशी की तरफ ले जाता है। काम में एक-दूसरे का शोषण होता है, प्रेम में एक-दूसरे का पोषण होता है। जो काम-सुख ज्यादा भोगता है, काम उसके शरीर, मन, पुण्य, ओज व यौवन का नाश कर देता है, जबकि प्रेम भीतर दिव्य नये रसायन पैदा करता है और आदमी बुढ़ापे में भी युवान जैसा मजबूत रहता है।

काम नाशवान होता है और प्रेम अविनाशी, अटूट होता है क्योंकि प्रेम जिस प्रेमास्पद परमेश्वर से किया जाता है वह सदा रहता है लेकिन कामी और कामिनी का शरीर सदा वैसा नहीं रहता। काम मनुष्य को अनात्मा में ले आता है, हाड़-मांस-चमड़े के शरीर में ले आता है और प्रेम मनुष्य को आत्मा में ले आता है।

काम जड़ोन्मुख बनाता है, प्रेम चैतन्योन्मुख बनाता है। काम भोगने के बाद आदमी थक जाता है, उसमें जड़ता आ जाती है और प्रेम से आदमी के अंदर व बाहर निखार आ जाता है, जड़ता नहीं बल्कि आनंद व उल्लास रहता है, चेतना व स्फूर्ति आ जाती है। काम शरीर की खुशामद करवाता है, प्रेम आत्मा की जागृति कराता है। काम भीतर से बाहर ले आता है (बर्हिमुख करता है) और प्रेम बाहर से भीतर ले जाता है (अन्तर्मुख कर देता है) काम विकारी होता है, प्रेम निर्विकारी होता है। काम में दोष पनपते हैं और प्रेम में निर्दोषता आती है।

काम में परिणाम में दुःख होता है और प्रेम में परिणाम में आनंदस्वरूप ईश्वर से मुलाकात होती है।

प्रेमी निर्भीक रहता है और कामी भयभीत रहता है। संसार को चाहनेवाला भयभीत रहता है और भगवान को चाहनेवाला निर्भीक रहता है। भगवान से प्रेम करनेवाला जानता है कि हो-होकर क्या हो जायेगा ? रोटी नहीं मिलेगी, भूखे मर जायेंगे तो उस ईश्वर की इज्जत जायेगी, मेरा क्या जायेगा ?

सोचा मैं न कहीं जाऊँगा,
यहीं बैठकर अब खाऊँगा।
जिसको गरज होगी आयेगा,
सृष्टिकर्ता खुद लायेगा॥

यह प्रेमी कह सकता है, कामी के बाप की ताकत नहीं ऐसा कहने की। भीतर और बाहर से शुद्ध वही होता है जिसमें प्रेम होता है। काम में बाहर से मीठी बातें

होती हैं और भीतर स्वार्थ होता है, प्रेम में भीतर-बाहर निःस्वार्थता की पवित्र सुवास होती है। काम से अशांति और झगड़े पैदा होते हैं, प्रेम से शांति और समाधान प्रकट होता है।

काम में परिणाम में दुःख होता है और प्रेम में परिणाम में आनंदस्वरूप ईश्वर से मुलाकात होती है। प्रेम प्रेमास्पद में दोष नहीं देखता। प्रेम में कठोरता नहीं होती। प्रेमी में कोई दोष होता है, उससे भूल हो जाती है तो भी चल जाता है। एक व्यक्ति बीमार पड़ा था और उसका मित्र चाय बनाकर ला रहा था। मित्र के हाथ से पतीली छूट गयी तो बीमार व्यक्ति कहता है :

''अरे... रे... आपको लगा तो नहीं, क्या हुआ, पैर तो नहीं जला ?''

उस व्यक्ति के लिए चाय का नुकसान महत्त्वपूर्ण नहीं, प्रेमी का महत्त्व है कि उसको चोट तो नहीं लगी। यदि नौकर से चाय गिर जाय तो वह व्यक्ति नाराज होगा कि ''अरे, अंधा है क्या ? वेतन लेता है, फिर भी ऐसा करता है।''

जिसके प्रति प्रेम होता है प्रेमास्पद उसकी सुरक्षा के लिए भागता है। इसीलिए भगवान से प्रेम करिये ताकि वे तुम्हारी सुरक्षा करें। कामी तो कामिनी को छोड़कर इधर-उधर जाता भी है परंतु प्रेमास्पद परमात्मा तो प्रेमी को कभी भी एक सेकंड के लिए भी छोड़कर कहीं नहीं जा सकता, उसकी ताकत नहीं। शरीर मर सकता है पर दिलबर ईश्वर का कभी तुम्हारे साथ वियोग नहीं होता - ऐसा वह प्रेमास्पद है ! शरीर साथ नहीं रहेगा, बेटा, पत्नी, दुकान, कुर्सी साथ नहीं रहेंगे पर भगवान कभी साथ नहीं छोड़ते।

जो साथ नहीं छोड़ते उनको अपना मानो उन्हींको प्रेमास्पद बनाओ, उन्हींके नाते सबसे व्यवहार करो और जो सदा साथ नहीं रहते उनके साथ माया का संबंध मानो तो दोनों हाथों में लड्डू। जो साथ छोड़ देते हैं उनकी सेवा करके लेन-देन पूरा करो और जो कभी साथ नहीं छोड़ता, उस परमात्मा से प्रेम करके परमात्ममय हो जाओ, महान आत्मा हो जाओ, मुक्तात्मा हो जाओ जो वास्तव में तुम हो।

स्वामी विवेकानंद की त्याग-भावना

एक बार रामकृष्ण परमहंस ने नरेन्द्र (स्वामी विवेकानंद) को एकांत में बुलाकर कहा :

''देखो, अति कठोर तपस्या के प्रभाव से मुझे कितने ही समय से अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो चुकी हैं, पर मेरे जैसे मनुष्य को, जिसे पहने हुए वस्त्रों का भी ध्यान नहीं रहता, इन सिद्धियों का उपयोग करने का अवसर ही कहाँ मिल सकता है ? अतः मैं चाहता हूँ कि माँ (काली देवी) से पूछकर इन सबको तुम्हें सौंप दूँ क्योंकि मुझे दिखायी पड़ रहा है कि आगे चलकर तुझे माँ का बहुत काम करना है। इन सब शक्तियों का तेरे भीतर संचार हो जाय तो समय पड़ने पर इनका उपयोग हो सकता है। बोलो, तुम्हारा क्या विचार है ?''

नरेन्द्र को अब तक के अनुभवों से परमहंसजी की दिव्य शक्तियों पर पूरा विश्वास हो चुका था। उन्होंने कुछ देर विचार करके पूछा :

''महाराज ! इन सब सिद्धियों से मुझे ईश्वर-प्राप्ति में सहायता मिल सकेगी ?''

''इस संबंध में तो संभवतः इनसे कोई सहायता प्राप्त नहीं हो सकेगी परंतु ईश्वर-प्राप्ति के पश्चात् जब कार्य करने में प्रवृत्त होगे तो ये सब बहुत उपयोगी होंगी।''

''महाराज ! इन सब सिद्धियों की मुझे क्या आवश्यकता है ? पहले ईश्वर-दर्शन हो जायें, फिर देखा जायेगा कि इन सिद्धियों को ग्रहण किया जाय या नहीं ? अत्यंत चमत्कारिक विभूतियों और सिद्धियों को अभी से लेकर अगर ईश्वर-प्राप्ति के ध्येय को भुला दिया जाय एवं स्वार्थ से प्रेरित होकर इनका अनुचित प्रयोग किया जाय तो ये बड़ी हानिकारक होंगी।''

इस उत्तर को सुनकर परमहंसजी बहुत प्रसन्न व संतुष्ट हुए। उन्होंने परख लिया कि नरेन्द्र वास्तव में त्याग-भावनावाला है और सेवामार्ग में बहुत अधिक प्रगति कर सकेगा।

जिसके जीवन में त्यागरूपी सद्गुण होता है उसे सहज ही लक्ष्यप्राप्ति हो जाती है, सफलताएँ उसके चरण चूमती हैं।

चतुर्भुजी नारायण की लीला

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

उदयपुर (राज.) के समीप श्री रूपचतुर्भुज स्वामी का मंदिर है। वहाँ देवाजी नामक पुजारी बहुत प्रेम से भगवान की पूजा करते। रात्रि होने पर ठाकुरजी को शयन कराने के बाद ठाकुरजी की माला पुजारी अपने सिर पर रखकर सो जाते। एक रात्रि में उदयपुर के राजा वहाँ आये और पुजारी से बोले : ''ठाकुरजी को तो नहीं जगाऊँगा, कम-से-कम ठाकुरजी को चढ़ायी हुई माला तो ला दो।''

पुजारीजी गये, दूसरी माला तो थी नहीं, अतः जो माला अपने सिर पर रखी थी, जल्दी-जल्दी वही माला राजा के गले में पहना दी। पुजारी के लम्बे-लम्बे सफेद बाल थे, उनमें से दो बाल माला के साथ आ गये। माला के साथ सफेद बाल देखकर राजा ने पूछा : ''यह ठाकुरजी की प्रसादी है क्या?''

देवाजी बोले : ''हाँ।''

''ठाकुरजी को सफेद बाल आ गये हैं क्या?'' अब देवाजी घबराये और बोले : ''हाँ, ठाकुरजी को सफेद बाल आ गये हैं।'' राजा ने व्यंग्य कसते हुए कहा : ''अच्छा, चतुर्भुजी नारायण को सफेद बाल आ गये हैं तो मैं उन्हें सुबह देखने आऊँगा।''

राजासाहब तो घोड़े पर चढ़कर चले गये। देवाजी चिंतित हुए, 'मैंने बोल तो दिया कि ठाकुरजी को सफेद बाल आ गये हैं। अब राजा सुबह देखने आयेगा।' वे भगवान को पुकारने लगे : ''हे चार भुजावाले परमेश्वर ! मेरी इज्जत, मेरी जिन्दगी का क्या होगा ? ओ केशव ! ओ माधव ! हे अनन्त ब्रह्माण्ड के नायक ! मैं तुम्हारा पुजारी नहीं हूँ। मैं तो पापी पेट का पुजारी हूँ, महाराज। हे हजारों हाथवाले ! लाखों-करोड़ों हाथवाले !...''

लोग सो रहे थे, पक्षी घोंसलों में आराम कर रहे थे पर देवाजी को नींद कहाँ ? वे तो प्रभु को पुकारे जा रहे थे। बस, दो ही जग रहे थे - एक देवाजी और दूसरे उनके धणी (भगवान नारायण) जग रहे थे कि मुझे मेरा भक्त पुकार रहा है। प्रभु ने उनकी पुकार सुन ली। सुबह हुई, देवाजी ठाकुरजी की पूजा-आरती के लिए गये तो देखा कि लम्बे-लम्बे काले बाल चाँदी जैसे चमकते सफेद हो गये ! देवाजी बार-बार देखें। देवाजी कहने लगे : ''मेरे ठाकुरजी ! दास की लाज रखनेवाले सर्वसमर्थ ! **कर्तुं शक्यं अकर्तुं शक्यं अन्यथा कर्तुं शक्यम्।** यह क्या कर लिया महाराज ! इस बूढ़े की लाज रखने के लिए आप भी बूढ़े बन गये। हे भगवान ! तेरी लीला निराली है।''
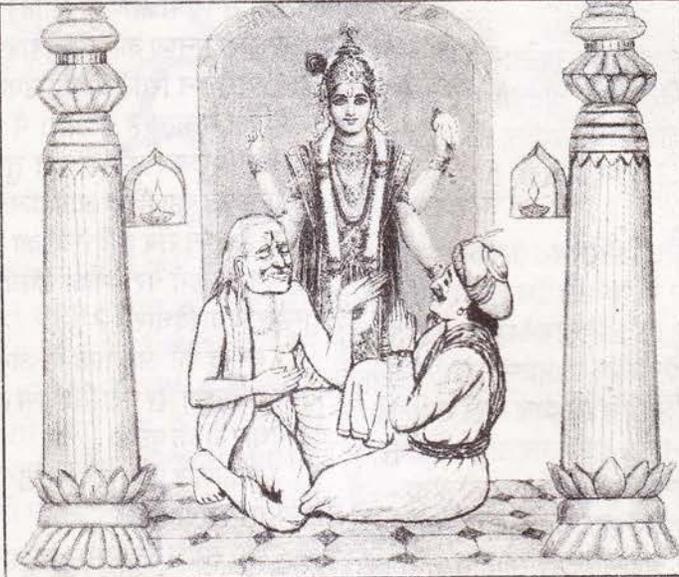
''मैं भगवान का नहीं पेट का पुजारी हूँ। प्रभु पेट के पुजारी की भी लाज रखते हैं, यदि मैं सच्चा पुजारी होता तो मेरे नाथ मुझे कहाँ पहुँचा देते...''

आज भी वह चतुर्भुजी नारायण का मंदिर है, जिसे विश्वास न हो वह जाकर देख ले।

'गीता' में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : **ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। (गीता : ४.११)** जो जिस भाव से मुझको भजता है, मैं भी उसको उसी प्रकार

भजता हूँ। उसके अनुरूप मैं उसे फल देता हूँ। कोई पुत्ररूप में मुझे चाहता है तो मैं पुत्र बन जाता हूँ, कोई सखारूप में चाहता है तो मैं सखा बन जाता हूँ, कोई सेवकरूप में मुझे चाहता है तो मैं उत्तम सेवक बन जाता हूँ, कोई स्वामी के रूप में मुझे चाहता है तो मैं स्वामी बन जाता हूँ। जो मुझे जैसे भजता है, उसके लिए मैं वैसा ही बन जाता हूँ। भगवान का यह वचन है। भगवान अपना यही वचन निभा रहे हैं।

इतने में तो राजा भी पहुँचे। वे मंदिर में गये तो देखते ही बोले : ''ऐंऽऽऽ...! ठाकुरजी, चतुर्भुजी नारायण के बाल सफेद ! यह सच नहीं हो सकता। मैं परीक्षा लूँगा। इस पुजारी ने अपनी बात रखने के लिए गोंद या किसी दूसरी चीज से ठाकुरजी पर बाल चिपका दिये होंगे।''

देवाजी ने तो भगवान के श्रीचरणों में अपना सिर रख दिया; परंतु राजमद और बुद्धिचातुर्य के मद से भरे राजा ने कहा : ''ठीक है, मैं देखता हूँ, इसमें क्या कला है ?'' राजा हाथ-पैर धोकर ठाकुरजी के पास गये और उनका एक बाल उखाड़ लिया। ठाकुरजी के मस्तक से खून का छींटा उड़ा और राजा के सफेद दुशाले पर पड़ा। उदयपुर नरेश धम्म से धरती पर गिर पड़े और एक पहर तक मूर्च्छित-से पड़े रहे। देवाजी भावों में खोये थे और राजा कौन-सी दुनिया में खो गये, यह तो ऊपरवाला ही जाने।

भगवान तो अंतर्यामी हैं, सभीका मंगल ही चाहते हैं। ऐसी कौन-सी माँ है जो बेटे-बेटी का अमंगल करे। भगवान तो उससे भी अधिक करुणा-वरुणालय हैं। देवाजी का तो मंगल कर ही दिया, अब राजा का मंगल करने के लिए उसे एक पहर कुछ न करने की अवस्था में रख दिया। बाद में राजा सजाग हुए। ठाकुरजी के सामने देखकर पुजारी से बोले : ''मैं जन्मों का पापी हूँ। तुम भगवान के भक्त हो, मैं राजगद्दी का भगत हूँ। मैं भक्तों को क्या जानूँ ? देवाजी ! आप मुझे माफ कर दो। आपकी प्रार्थना से ठाकुरजी ने जो लीला की वह मैं जान नहीं सकता।'' उदयपुर नरेश पुजारी के चरणों में गिर पड़े। पुजारी कहते हैं : ''महाराज ! मैं भगवान का पुजारी नहीं हूँ, मैं तो पेट का पुजारी हूँ। प्रभु पेट के पुजारी की भी लाज रखते हैं, यदि मैं सच्चा पुजारी होता तो मुझे कहाँ पहुँचा देते मेरे नाथ...''

उदयपुर नरेश देवाजी के चरणों में फूट-फूटकर रोये। पुजारी बोले : ''राजा ! यह सब लीलाधारी की लीला है। जब आपका अपमान हो या दुःख आ जाय तो समझ लेना कि उसकी लीला है; अपमान व दुःख के द्वारा वह आपका अभिमान और वासना मिटाना चाहता है। मान, सुख और सफलता मिल जाय तो समझना उसकी दया है, वह आपका हौसला बुलंद करना चाहता है। बीमारी, मौत आ जाय तो भी उसकी कृपा ही है। यह शरीर बीमारियों का घर है और मौत तो आनी ही है, अतः इस शरीर से ममता हटाओ, यह संदेश मिलता है। तंदुरुस्ती और प्रसन्नता आ जाय तो यह उस अमर आत्मा की चेतना है। इस तरह लीलाधारी की लीला की समीक्षा करो।''

आप भी भगवान से ऐसी प्रार्थना करो : 'हे दया के सागर ! पुजारी की पुकार सुनकर, उस पर दया करके हे चतुर्भुजी नारायण ! आपने अपने बाल सफेद बना लिये तो हमारा दिल भी सफेद बना दो न महाराज ! मेरे मन की मलिनता दूर कर दो न नाथ ! वह पुजारी बोलता है कि हम पेटपालू पुजारी हैं, वैसे ही हम भी पेटपालू हैं महाराज ! हे अनन्त ब्रह्मा, अनन्त विष्णु, अनन्त शिव के हृदय के प्रेरक-प्रकाशक ! हम जैसे-तैसे हैं तेरे हैं। तू उदार है, दयालु है। तू हमें अपनी मीठी भक्ति दे दे, अपनी प्रीति दे दे ताकि संसार फीका लगे और तू मीठा लगे। ये मन के दुर्गुण तेरी प्रीति के बिना नहीं जायेंगे, इसलिए हमें अपनी प्रीति का दान दे दे...'- ऐसे सच्चे हृदय से, सच्चे अंतःकरण से उसे पुकारो। जब संसार मीठा लगता है तब सारे दुर्गुण आ जाते हैं, पर जब भगवान मीठे लगेंगे तब संसार फीका लगने लगेगा एवं सारे दुर्गुण चले जायेंगे।

महत्त्वपूर्ण निवेदन

सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १५८वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया दिसम्बर २००५ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

❊ 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्यता क्रमांक/रसीद-क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा।

❊ नये सदस्यों को सदस्यता के अंतर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा।

भगवत्प्रेमी का छलकता माधुर्य

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

नातः परतरो मंत्रः नातः परतरः स्तवः ।
नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परात् परम् ॥

'प्रेम से बढ़कर न कोई मंत्र है, न कोई उत्कृष्ट स्तोत्र है, न कोई उत्कृष्ट विद्या है और न कोई उत्कृष्ट तीर्थ है।'

(निरोधलक्षण : २०)

'नारद भक्तिसूत्र' में देवर्षि नारदजी कहते हैं :

स तरति स तरति लोकांस्तारयति।

'भगवत्प्रेमी भक्त स्वयं तो तरता ही है, दूसरों को भी तार देता है।'

मुझे मान मिले, मुझे धन मिले इसलिए प्रेमीभक्त भगवान का चिंतन-भजन नहीं करता, उसका चिंतन-भजन तो केवल भगवान से विशुद्ध प्रेम के नाते ही है। प्रेम भगवान का साक्षात् स्वरूप है। जिसे विशुद्ध प्रेम की प्राप्ति हो गयी उसे भगवान मिल गये।

भगवत्प्रेमी के जीवन में ६ बातें होती हैं :

पहली बात : वह जरा-जरा सी बात पर लड़ाई-झगड़ा, निंदा-फरियाद नहीं करता। लड़ाई का निमित्त होते हुए भी वह भगवान के नाते दूसरे व्यक्ति को क्षमा कर देता है। वह तो यही समझता है कि मुझे जो जीवन मिला है वह परमात्मा का है, भगवान का है। जो चैतन्य परमात्मा मुझमें बसा है वही दूसरे में भी है, फिर मैं निंदा-द्वेष किससे करूँ ?

वह यही समझता है कि मुझे जो जीवन मिला है वह परमात्मा का है। जो चैतन्य परमात्मा मुझमें बसा है वही दूसरे में भी है, फिर मैं निंदा-द्वेष किससे करूँ ?

आप भगवान से प्रेम करते हो तो अपने जीवन में यह सद्गुण लाइये। भाई-भाई की, बाप-बेटे की या सास-बहू की लड़ाई हो गयी हो तो बहू-बेटियो ! मेरे लाला ! मेरी लालियाँ ! बड़ा दिल रखकर भगवान के नाते एक-दूसरे को क्षमा कर देना। इससे आपका भी मंगल होगा और दूसरे का भी मंगल होगा। आपके मन में भगवत्प्रेम का, भगवत्प्रसाद का माधुर्य बना रहेगा, साथ में दूसरे व्यक्ति के मन में भी आपके प्रति सद्भाव पैदा होगा।

दूसरी बात : भगवत्प्रेमी व्यर्थ की, इधर-उधर की, तेरे-मेरे की बातों में समय नहीं गँवाता। 'यह पा लूँ, यह इकट्ठा कर लूँ, यह हो जाय, वह हो जाय, वह हो गया' - इन सबमें वह समय बर्बाद नहीं करता। वह तो कर्तव्य कर्मों में समय का सदुपयोग कर दिन-रात परमात्म-चिंतन में ही डूबा रहता है।

तीसरी बात : भगवत्प्रेमी को सत्ता, धन, पद का अभिमान नहीं होता। निगुरे व्यक्तियों को अपनी डिग्रियों, पद, धन, लोकसंग्रह का

अभिमान होता है। भगवत्प्रेमी सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान सबको समान रूप से देखता रहता है लीलाधर की लीला समझकर।

चौथी बात : उसे भगवान के नाम में, गुणों में प्रीति हो जाती है। वह चलते-फिरते, उठते-बैठते 'हरि ॐ, राम, कृष्ण, नारायण' आदि भगवन्नामों का उच्चारण करता रहता है। भगवन्नाम सुनने में उसे आनंद आता है। कहीं सत्संग होगा तो वहाँ जाकर बैठ जायेगा, पर जहाँ मजहबवादी लोग भाषण करते होंगे वहाँ भगवत्प्रेमी का मन टिकेगा ही नहीं। उसका मन तो अपने प्रियतम भगवान के चरणों में ही टिकता है।

पाँचवीं बात : भगवत्प्रेमी को भगवत्प्राप्ति की सम उत्कंठा बनी रहती है। 'आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों... देर-सवेर भगवान मुझे मिलेंगे ही। मरकर भी मैं जाऊँगा कहाँ ? प्रभु मुझे अपने धाम में बुला लेंगे। दर्शन दे देंगे।' - भगवत्प्रेमी की ऐसी आशा बनी रहती है।

सरोवर काँठे शबरी बेठी...
सरोवर काँठे भीलण बेठी... धरे रामनु ध्यान।
एक दिन आवशे स्वामी मारा अंतरना आराम...
राम-राम रटताँ शबरी बेठी... हैये[1] राखी राम।

रामरस में सराबोर शबरी दिन-रात श्रीराम के चिंतन में डूबी रहती, 'मेरे प्रभु राम आयेंगे।' कई वर्ष बीत गये फिर भी बस, एक ही लगन, एक ही तड़प कि 'मेरे प्रभु मुझे दर्शन देने अवश्य आयेंगे' और प्रभु श्रीराम उसे दर्शन देने आये, उस भीलण शबरी के बेर खाये। कैसी है प्रेम की पराकाष्ठा! कैसा है प्रेम का माधुर्य!

भगवत्प्रेम सारी दैवी संपत्तियों का उद्‌गम-स्थान है। जहाँ प्रेम है, वहाँ त्याग, सद्‌भावना, सहिष्णुता, क्षमा, उदारता, मैत्री, अहिंसा, सेवा, सरलता, निष्कामता, प्रसन्नता, सत्य, विश्वास, साहस एवं सौजन्य आदि सद्‌गुण अपने-आप आ जाते हैं और जहाँ स्वार्थ है वहाँ भय, असहिष्णुता, क्रोध, कृपणता, द्वेष, विषाद, अविश्वास, घृणा, लोभ तथा कायरता आदि नीच वृत्तियाँ अपने-आप उत्पन्न हो जाती हैं।

छठी बात : जब भगवत्प्रेमी का प्रेम अपने प्रियतम के साथ अनन्य हो जाता है, तब दोनों (वह और उसका प्रियतम) एकाकार हो जाते हैं। फिर उसे अपना प्रियतम दूर नहीं लगता, चलते-फिरते भी वह उससे बातें करता रहता है।

बचपन में मैं कई कष्टों से गुजरा। चलते-फिरते मन-ही-मन उस प्यारे से बातें करता और बोलता कि 'देख ! तेरे को मुझे जितने कष्ट देने हैं अभी दे डाल, पर बड़ी उम्र में मत देना' और अब इस उम्र में मौज-ही-मौज है। मुहब्बत जब जोर पकड़ती है तो शरारत का रूप लेती है।

सोचा मैं न कहीं जाऊँगा यहीं बैठकर अब खाऊँगा।
जिसको गरज होगी आयेगा सृष्टिकर्ता खुद लायेगा।

यह कौन कह सकता है ?

प्रेमी ही कह सकता है। यह दादागिरी नहीं है, फिर भी शुद्ध दादागिरी है। दादागिरी करनी है तो उसी अपने प्रेमी भगवान से करो, लोगों से क्या दादागिरी करना ? भिड़ना है तो उसीसे भिड़ो, जिससे कंस भिड़े, रावण भिड़े और कल्याण हो गया।

तुम भगवान के हो, भगवान तुम्हारे हैं। उनसे अधिक निकट, आत्मीय आपका और कोई नहीं है। वही तुम्हारे परम हितैषी हैं, परम सुहृद हैं। भगवान स्वयं प्रेममय हैं, प्रेम करने योग्य हैं और भगवान को प्राप्त करने का साधन प्रेम ही है। उन्हींको अपना परम प्रेमी मानिये, उन्हींका चिंतन करने की रीति को जानिये। 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता' में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।

'हे अर्जुन ! जो नित्ययुक्त है, निरंतर मुझमें लगा है उसके लिए मैं सुलभ हो जाता हूँ।' (८.१४)

बुद्धिशक्तिवर्धक प्रयोग

मंत्र : गं गणपतये नमः।

मंत्र का जप करके, जहाँ चोटी रखते हैं वहाँ दायें हाथ की उँगलियों से स्पर्श करें और संकल्प करें कि 'हमारे मस्तक का यह हिस्सा विशेष संवेदनशील हो, विकसित हो।' इससे ज्ञानतंतु सुविकसित होते हैं, बुद्धिशक्ति व संयमशक्ति का विकास होता है।

---
[1] हृदय में

...बच्चे घर से क्यों भाग जाते हैं ?

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

कुछ बच्चे घर से भाग जाते हैं। क्यों ? क्योंकि या तो बचपन में उन्हें खूब लाड़ लड़ाया गया है अथवा खूब रोका-टोका गया है।

कुछ माता-पिता अपने बच्चे को खूब लाड़ लड़ाते हैं। वे सोचते हैं कि बेटे को बढ़िया स्कूल में पढ़ायेंगे, पायलट बनायेंगे। इसके लिए बच्चे को छात्रावास में भी रखते हैं किंतु बच्चा ऐसा हो जाता है कि न घर में रहता है, न छात्रावास में रहता है, न पायलट बनता है, वरन् फुटपाथी हो जाता है। ऐसे बच्चों को मैं जानता हूँ।

कुछ माँ-बाप बच्चों को खूब रोकते-टोकते हैं, क्योंकि माँ-बाप जैसा चाहते हैं बच्चे वैसा नहीं कर पाते। बच्चों की अपनी उमंगें हैं, अपनी ख्वाहिशें हैं; ज्यादा टोकाटाकी से बच्चा बेचारा भीतर-ही-भीतर सिकुड़ता रहता है। फिर वह छुपकर गलती करता है और उसमें बेईमानी करने की आदत पनपती है।

कभी माता-पिता की टोकाटाकी हितकारक होती है तो कभी गड़बड़ी कर देती है। माता-पिता या कुटुंबी के लिए उचित है कि वे बच्चे को इतना विश्वास में लें कि बच्चा कोई गलती करे तो अपने कुटुंबी को बता दे। गलती जानकर उसको ज्यादा टोकें नहीं, गलती का मूल खोजें तथा उस मूल को हटा दें, बच्चा फिर गलती नहीं करेगा।

बालक पैदा होता है तबसे लेकर ७ साल तक उसका मूलाधार केन्द्र विकसित होता है। इन ७ सालों तक बालक बीमार न हो, इसकी सावधानी बरतें। २-३ साल का होने पर साल में एक बार ३-४ दिन पपीता और उसके बीज खिलायें ताकि उसका पेट ठीक रहे।

बालक इधर-उधर की चीजें खाता है, भोजन के समय ठीक से नहीं खाता तो आगे चलकर उसका पाचनतंत्र खराब हो जायेगा। माता-पिता को चाहिए कि खान-पान में ज्यादा लाड़ न लड़ायें व खान-पान की सलाह किसी वैद्य या जानकार से लें।

७ से १४ वर्ष की उम्र में स्वाधिष्ठान केंद्र विकसित होता है। अगर इस उम्र में ध्यान न दिया गया तो उसमें गंदी भावनाएँ और गंदी आदतोंवाले बच्चों के संस्कार पड़ेंगे। इस समय वह जैसा देखेगा और जैसी भावनाएँ उसके चित्त में आ गयीं, वे सब उसे जीवनभर नचाती रहेंगी। माता-पिता के लिए उचित है कि उसकी अच्छी भावनाओं का पोषण करें तथा बुरी भावनाओं को निकालने के लिए प्रोत्साहित करें लेकिन दबाव न डालें।

१४ से २१ साल तक मणिपुर केंद्र विकसित होता है। उन दिनों में संयम-पालन, सूर्यनमस्कार आदि करने से वासनाओं, भावनाओं के आवेग में या भय-चिंता में बच्चों से जो गलतियाँ होती हैं, उन पर वे स्वयं नियंत्रण पा सकते हैं और बुद्धिपूर्वक अच्छे इरादे से कर्म करके

ऊँचे उठ सकते हैं।

भ्रूमध्य को अनामिका से हल्का रगड़ते हुए **'ॐ गं गणपतये नमः', 'ॐ गुरुभ्यो नमः'** करके तिलक करें। फिर २-३ मिनट प्रणाम की मुद्रा में सिर जमीन पर लगाकर रखें। इससे निर्णयशक्ति, बौद्धिकशक्ति में जादुई लाभ होता है। क्रोध, आवेश, वैर-झैर पर नियंत्रण पानेवाले रसों का भीतर विकास होता है।

शवासन में आत्मिक शक्तियाँ खींचकर पाँचों शरीरों में लाने की व्यवस्था है। बाह्य शरीर का मोटा हो जाना, वांछनीय नहीं है; मजबूत हो जाना वांछनीय है। बाह्य शरीर के साथ प्राणमय शरीर भी विकसित होना चाहिए। प्राणबल कमजोर है, मनोबल कमजोर है तो दूसरे के प्राणबल व मनोबल के आगे आपका मन सिकुड़ जायेगा। आपकी विचारशक्ति कमजोर है तो दूसरा आपको पटा लेगा। अतः बालक के पाँचों शरीर विकसित हों इस पर ध्यान दें।

''बापूजी ! बच्चे बहुत परेशान करते हैं। क्या करें ?''

बच्चे चंचल हैं तो उन्हें ज्यादा रोकें-टोकें नहीं। उनकी यह अवस्था ही है उछलकूद करने की किंतु उस उछलकूद को वे सुव्यवस्थित कर सकें - ऐसा उपाय करें। ज्यादा टोकेंगे तो वह छुपकर करेगा अथवा उसका मन दब जायेगा या विरोधी हो जायेगा। इस तरह उसका हित चाहते हुए भी आप अनजाने में अहित कर बैठते हैं।

माता-पिता ज्यादा रोकेंगे-टोकेंगे तो उनके मन में माता-पिता के लिए जो आदर, मान और स्नेह होना चाहिए, वह नहीं होगा। १२ साल के दिमागवाले को बलात् ६० सालवाले जैसा रहने-करने के लिए कहें तो उसके लिए वैसा कर पाना संभव नहीं है।

''क्या बच्चा जैसा करना चाहे, उसे करने दिया जाय ?''

हाँ, कुछ तो करने दिया जाय और कुछ मोड़ दिया जाय। अगर अत्यंत अनुचित करता है तो दबाव से अनुचित छोड़े, इसकी अपेक्षा सुझाव से छोड़े - ऐसा प्रयत्न करना चाहिए।

'चाय न पीयो... काफी न पीयो...' - ऐसा कहने की जगह उससे कहो : 'केवल दूध पीयो।' इनकार की अपेक्षा बच्चे को मोड़ने की कला माता-पिता को सीखनी चाहिए।

'तेरे में यह कमी है, यह कमी है...' - ऐसा करके आप अनजाने में बच्चे के साथ जो जुल्म करते हैं, वह न करें। बच्चे में आपको १०० अवगुण दिखते हैं, ऐसे ही उसमें कोई-न-कोई सद्गुण भी तो होगा। जो गुण है उसकी प्रशंसा करें, उसका उत्साह बढ़ायें।

फिर उसमें जो कमी है उसके प्रति थोड़ी-सी ग्लानि पैदा करा दें, 'बेटा ! ऐसा तुझे शोभा नहीं देता। तू चाहे तो इस कमी को निकाल सकता है।' इस तरह अपनी कमी के प्रति मन में ग्लानि आने से वह स्वयं ही उसे निकाल देगा।

लोग बोलते हैं, यह उन्नति का युग है। मैं बोलता हूँ कि युवान-युवतियों के लिए ऐसा पतन का युग जो अभी चल रहा है कभी नहीं आया। बच्चों पर बड़ा जुल्म हो रहा है। उनका शरीर मजबूत नहीं हो रहा है, मनोबल विकसित नहीं हो रहा है एवं बुद्धिबल सूक्ष्मता की यात्रा नहीं कर रहा है।

अतः बच्चे को १०-१० प्राणायाम सुबह-शाम करवाना चाहिए, सूर्यनमस्कार करवाना चाहिए।

जग में शांति लानी है, खुशियाँ लानी हैं तो ऋषिपद्धति से शिक्षण की आवश्यकता है। इस पद्धति का उपयोग करके आप अपनी संतान को ओजस्वी-तेजस्वी अवश्य बना सकते हैं।

जग में शांति लानी है, खुशियाँ लानी हैं तो ऋषिपद्धति से शिक्षण की आवश्यकता है। इस पद्धति का उपयोग करके आप अपनी संतान को ओजस्वी-तेजस्वी अवश्य बना सकते हैं।

खुद में बड़प्पन का अभिमान न करें, न ही दूसरों को छोटा मानकर उनका तिरस्कार करें। किसीसे घृणा न करें। किसीका अपमान न करें। कभी किसीका जी न दुखायें, न ही कड़वे वचन बोलें। दूसरों की बुराई और चुगली न करें, नहीं तो अपने भी पराये हो जायेंगे।

आसक्ति अनंत बार मारती है

किसी भी व्यक्ति, वस्तु अथवा परिस्थिति के प्रति ममता-आसक्ति रखना साधना मार्ग का बहुत बड़ा विघ्न है। साधारण गृहस्थियों को तो अपने पत्नी-पुत्र-परिवार आदि में आसक्ति होती ही है, किंतु त्यागी-साधु हो जाने के बाद भी मन कभी-कभी धोखा दे जाता है।

स्वामी रामसुखदास महाराज अपने सत्संग में बताते थे कि एक त्यागी संत थे। पैसा नहीं छूते थे और एकांत में भजन करते थे। एक भाई उनकी बहुत सेवा करता था। एक बार किसी जरूरी काम से उसे दूसरे शहर जाना पड़ा। उसने संत से कहा : ''महाराज! मैं जा रहा हूँ। पीछे न जाने कोई सेवा करे न करे, बीस रुपये यहाँ सामने गाड़ देता हूँ, काम पड़े तो आप किसीसे कह देना।'' बाबाजी ना-ना करते रहे, पर वह बीस रुपये गाड़ ही गया। उसके पीछे बाबाजी बीमार पड़े और मरकर भूत बन गये! अब वहाँ रात्रि में कोई रहे तो उसे खड़ाऊँ की आवाज सुनायी दे। लोग सोचें कि बात क्या है?

जब वह भाई वापस आया तो उसे किसीने कहा : ''वहाँ रात को खड़ाऊँ की आवाज आती है। कोई भूत-प्रेत है, पर किसीको दुःख नहीं देता।'' वह भाई रात्रि में वहाँ रहा और प्रार्थना की तो बाबाजी दिखे तथा बोले : ''मरते वक्त तेरे रुपयों की तरफ मन चला गया था। अब इन्हें तू कहीं लगा दे तो मैं छुटकारा पाऊँ।'' बाबाजी ने रुपयों को काम में नहीं लिया पर 'मेरे लिए रुपये पड़े हैं' - इस भावमात्र से ही यह दशा हो गयी। जब वे रुपये वहाँ से निकालकर धर्मकार्य में लगाये गये, तब कहीं जाकर बाबाजी की गति हुई।

जीवन का अंत हो जाता है किंतु कामनाओं का अंत नहीं होता। जितनी कामना, उतनी बार मृत्यु क्योंकि जीवात्मा की हर कामना एक जन्म बन जाती है और हर कामना एक मृत्यु भी...

ऐसे ही वृन्दावन की एक घटना है। एक गली में एक भिखारी पैसे माँगा करता था। उसके पास एक रुपये से कुछ कम पैसे इकट्ठे हो गये थे। वह मर गया। जहाँ उसके चिथड़े पड़े थे, वहाँ लोगों ने एक छोटा-सा साँप बैठा हुआ देखा। साँप को कई बार दूर फेंका गया, पर वह फिर उन्हीं चिथड़ों में आकर बैठ जाता। कई बार ऐसा हुआ तो लोगों ने सोचा, 'बात क्या है?' साँप को दूर फेंककर चिथड़ों में देखा तो उनमें से वही पैसे मिले। वे पैसे किसी काम में लगा दिये तो फिर वह साँप देखने में नहीं आया।

भीतर जो वासना रहती है, वह बड़ी भयंकर है। वस्तुओं में प्रियता के कारण ही वासना होती है। वस्तुओं में प्रियता या आकर्षण के बजाय भगवान में प्रियता होने से वासना निर्वासना में बदल जाती है।

भगवान बुद्ध के एक शिष्य भिक्षुक तिष्य कुमार को किसीने मोटे सूत की एक खुरदरी-सी चादर भेंट में दी। तिष्य ने बड़े बेमन से चादर ली और अपनी बहन सुवर्णा को दे दी कि वह उसमें से एक सुंदर चादर बना दे। काफी मेहनत करके सुवर्णा ने उसमें से सुंदर-सुकोमल, पतले सूतवाली, रंग-बिरंगी, कलात्मक चादर तैयार कर भाई को दे दी। उस मुलायम-कोमल चादर को देखकर तिष्य का मन-मयूर नाच उठा। उसे इस बात का अहंकार होने लगा कि ऐसी सुंदर चादर तो भगवान तथागत के पास भी नहीं है। रात होने को थी। तिष्य सोच रहा था कि इस समय इसे ओढ़ने पर अँधेरे में देखेगा भी कौन? सारा मजा तो दिखाने में है, इसलिए चादर को खूँटी पर टाँगकर वह लेट गया परंतु उसके मन में चादर का ही चिंतन चलता रहा। उसी रात्रि में उसकी मृत्यु हो गयी। तिष्य का अंतिम संस्कार करने के पश्चात् उसकी वस्तुएँ भिक्षुओं में बाँट दी गयीं। अन्य वस्तुएँ बाँटने के पश्चात् जब भिक्षुओं ने वह चादर उठायी तब चादर में छुपा एक चीलर (कपड़े का कीड़ा) पागल हो उठा कि 'अरे, मेरी यह प्यारी वस्तु तुम सब क्यों लूट रहे हो?' यह कहकर वह इधर-उधर दौड़ने-चिल्लाने लगा। चीलर को इस प्रकार छटपटाते देखकर भगवान बुद्ध ने योग-बल से उसका कारण जानना चाहा तो पाया कि चादर के प्रति वासना के कारण तुष्य की ही ऐसी दुर्गति हुई है। तथागत ने चादर बाँटने के लिए मना कर दिया। सात दिन के बाद चीलर मर गया। उसके बाद भगवान बुद्ध की आज्ञा से चादर किसी भिक्षुक को दे दी गयी। पहले चादर न बाँटने की आज्ञा व सात दिन बाद फिर से बाँटने का आदेश सुनकर भिक्षुओं को थोड़ा आश्चर्य हुआ। उनके पूछने पर भगवान बुद्ध ने सारी बात बताते हुए कहा : ''जीवन का अंत हो जाता है किंतु कामनाओं-वासनाओं का अंत नहीं होता। कामी व्यक्ति अनंत बार मरता है। जितनी कामना, उतनी बार मृत्यु क्योंकि जीवात्मा की हर कामना एक जन्म बन जाती है, साथ ही हर कामना एक मृत्यु भी बन जाती है।'' इन कामनाओं को मिटाने के लिए भगवत्प्राप्ति की सत्य कामना भगवान से ही मिला देती है।

समस्त अनर्थों का मूल अविचार

ध्यान रहे कि शरीर के दोषों का दर्शन करना, उनका चिंतन करना नहीं है। दोषों का चिंतन तो साधन में विघ्नरूप है, आसक्ति को पुष्ट करनेवाला है। अतः साधक को चाहिए कि शरीर की आदि, मध्य, अंतिम अवस्था पर तात्त्विक विचार करके उसकी वास्तविकता को देखे। उसके दोषों का चिंतन न करे। इस प्रकार जब साधक प्राप्त विवेक द्वारा शरीर के वास्तविक स्वरूप का दर्शन कर लेता है, तब शरीर की सत्यता और सुंदरता मिट जाती है। उनके मिटते ही काम का अंत हो जाता है। फिर अनंत व नित्य सौंदर्य के निधान परम प्रेमास्पद प्रभु से मिलने की लालसा जाग्रत हो जाती है।

साधक को विचार करना चाहिए कि शरीर में सुंदरता, नित्यता और प्रियता की प्रतीति क्यों होती है ? इसका कारण क्या है ? विचार करने पर मालूम होगा कि अविचार अर्थात् विचार की कमी ही इसका कारण है। साधक का अपना स्वरूप नित्य चेतन और आनंदमय है। अतः वह जिसके साथ अपने को मिलाकर उसमें अहंभाव कर लेता है, उसीमें उसे नित्यता व चेतनता का भास होने लगता है और वह तब तक रहता है, जब तक साधक प्राप्त विवेक द्वारा उस पर विचार नहीं करता अर्थात् अपनी जानकारी का निरादर करता रहता है।

वास्तव में जो जिसका सजातीय है, उसीसे उसकी एकता अर्थात् वास्तविक संबंध है। अपने विजातीय से कभी भी किसीकी एकता या संबंध नहीं होता, तथापि शरीर, जो कि अपना सजातीय नहीं है, उसे ही अज्ञानवश सजातीय मानकर मनुष्य उससे अपनी एकता और संबंध मानने लग जाता है। इसीका नाम अविचार है और यही समस्त अनर्थों का मूल है।

यह सभी मनुष्यों की स्वाभाविक जानकारी है कि 'शरीर मैं नहीं हूँ।' बोलचाल में भी सब कहते हैं कि 'यह मेरा हाथ है, यह पैर है, यह आँख है, यह मन है, यह बुद्धि है इत्यादि।' कोई भी ऐसा नहीं कहता कि 'मैं हाथ हूँ, मैं आँख हूँ', तथापि ऐसी मान्यता बन गयी है कि 'शरीर मैं हूँ।' 'मैं शरीर नहीं हूँ' - ऐसा अनुभव सतत नहीं रहता। यही कारण है कि वह शरीर के सुख-दुःख से अपने को सुखी-दुःखी मानता है। अतएव यह अनित्य, क्षणभंगुर एवं गंदा शरीर नित्य एवं सुंदर भासने लग गया है। इसमें और इसके संबंधियों में अपनत्व हो जाने के कारण उनमें प्रियता का भास होता है, इसीको 'काम' कहते हैं। इसीका विस्तार नाना भोग-सामग्रियों को, उनको भोगने की शक्ति को और उनके उपयुक्त (अनुकूल) परिस्थितियों को प्राप्त करने की इच्छाएँ हैं। प्रकृति का यह नियम है कि इच्छाओं के अनुसार मनुष्य की प्रवृत्ति तो होती है पर उस प्रवृत्ति के अंत में प्राप्ति कुछ भी नहीं होती। इच्छाओं को मनुष्य मिटा तो सकता है, उनकी पूर्ति नहीं कर सकता। भोगों के उपभोग से होता क्या है ? भोगने की शक्ति का ह्रास और भोग-वासना की उत्तरोत्तर वृद्धि। जिसके कारण अभाव का अनुभव कभी नहीं मिटता और कहीं भी सुख-शांति की उपलब्धि नहीं होती।

साधक को चाहिए कि जो जानकारी उसे स्वतः प्राप्त है, उसका आदर करे, उसका सदुपयोग करे। उसके द्वारा यह निश्चय करे कि न तो यह शरीर मैं हूँ और न यह मेरा है। जब यही मेरा नहीं है, तब इससे संबंध रखनेवाले इसीके सजातीय अन्य पदार्थ तो मेरे हो ही कैसे सकते हैं ? यह निश्चय होते ही सब प्रकार की इच्छाएँ अपने-आप निवृत्त हो जाती हैं, अंतःकरण शुद्ध, शांत और स्थिर हो जाता है। फिर यह निश्चय करने में कोई कठिनाई नहीं होती कि मेरे तो केवल भगवान हैं और मैं उन्हींका हूँ। मेरी और उनकी सजातीयता है। स्वभाव से ही मैं उनका प्रिय हूँ, वे मेरे प्रेमास्पद हैं। जिस समय मैं उनके व अपने संबंध को भूला हुआ हूँ, उस समय भी मेरा और उनका जो नित्य संबंध है वह तो है ही। उसका कभी विच्छेद नहीं होता। यह विश्वास दृढ़ हो जाने पर साधक के हृदय में तत्काल उन परम सुहृद, परम प्रेमास्पद अपने प्रभु से मिलने की उत्कट लालसा जाग्रत हो उठती है। उसकी पूर्ति होने पर भी वह मिटती नहीं बल्कि नित्य नूतन बनी रहती है।

भगवत्प्रेम किसी भी कर्म का फल या क्रिया-साध्य वस्तु नहीं है। उसके लिए कालांतर की प्रतीक्षा करना भूल है। भगवान से और उनके प्रेम से साधक का देश, काल, अवस्था विषयक किसी प्रकार का भी व्यवधान अथवा

(शेष पृष्ठ क्र. ३२ पर)

पुत्रदा एकादशी

युधिष्ठिर बोले : श्रीकृष्ण ! कृपा करके पौष मास के शुक्लपक्ष की एकादशी का माहात्म्य बतलाइये। उसका नाम क्या है ? उसे करने की विधि क्या है ? उसमें किस देवता का पूजन किया जाता है ?

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : राजन् ! पौष मास के शुक्लपक्ष की जो एकादशी है, उसका नाम 'पुत्रदा' है।

'पुत्रदा एकादशी' को नाम-मंत्रों का उच्चारण करके फलों के द्वारा श्रीहरि का पूजन करे। नारियल के फल, सुपारी, बिजौरा नींबू, जमीरा नींबू, अनार, सुन्दर आँवला, लौंग, बेर तथा विशेषतः आम के फलों से देवदेवेश्वर श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए। इसी प्रकार धूप-दीप से भी भगवान की अर्चना करे।

'पुत्रदा एकादशी' को विशेषरूप से दीप-दान करने का विधान है। रात को वैष्णव पुरुषों के साथ जागरण करना चाहिए। जागरण करनेवाले को जिस फल की प्राप्ति होती है, वह हजारों वर्षों तक तपस्या करने से भी नहीं मिलता। यह सब पापों को हरनेवाली उत्तम तिथि है।

चराचर जगतसहित समस्त त्रिलोकी में इससे बढ़कर दूसरी कोई तिथि नहीं है। समस्त कामनाओं तथा सिद्धियों के दाता भगवान नारायण इस तिथि के अधिदेवता हैं।

पूर्वकाल की बात है, भद्रावतीपुरी में राजा सुकेतुमान राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम चम्पा था। राजा को बहुत समय तक कोई वंशधर पुत्र प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए दोनों पति-पत्नी सदा चिंता और शोक में डूबे रहते थे। राजा के पितर उनके दिये हुए जल को शोकोच्छ्वास से गरम करके पीते थे। 'राजा के बाद और कोई ऐसा दिखायी नहीं देता, जो हम लोगों का तर्पण करेगा...' यह सोच-सोचकर पितर दुःखी रहते थे।

एक दिन राजा घोड़े पर सवार हो गहन वन में चले गये। पुरोहित आदि किसीको भी इस बात का पता न था। मृग और पक्षियों से सेवित उस सघन वन में राजा भ्रमण करने लगे। मार्ग में कहीं सियार की बोली सुनायी पड़ती थी तो कहीं उल्लुओं की। जहाँ-तहाँ भालू और मृग दृष्टिगोचर हो रहे थे। इस प्रकार घूम-घूमकर राजा वन की शोभा देख रहे थे, इतने में दोपहर हो गयी। राजा को भूख और प्यास सताने लगी। वे जल की खोज में इधर-उधर भटकने लगे। किसी पुण्य के प्रभाव से उन्हें एक उत्तम सरोवर दिखायी दिया, जिसके समीप मुनियों के बहुत-से आश्रम थे। शोभाशाली नरेश ने उन आश्रमों की ओर देखा। उस समय शुभ की सूचना देनेवाले शकुन होने लगे। राजा का दाहिना नेत्र और दाहिना हाथ फड़कने लगा, जो उत्तम फल की सूचना दे रहा था। सरोवर के तट पर बहुत-से मुनि वेदपाठ कर रहे थे। उन्हें देखकर राजा को बड़ा हर्ष हुआ। वे घोड़े से उतरकर मुनियों के सामने खड़े हो गये और पृथक्-पृथक् उन सबकी वन्दना करने लगे। वे मुनि उत्तम व्रत का पालन करनेवाले थे। जब राजा ने हाथ जोड़कर बारंबार दण्डवत् किया, तब मुनि बोले : 'राजन्! हम लोग तुम पर प्रसन्न हैं।'

राजा बोले : आप लोग कौन हैं ? आपके नाम क्या हैं तथा आप लोग यहाँ किसलिए एकत्रित हुए हैं ? कृपया यह सब बताइये।

मुनि बोले : राजन् ! हम लोग विश्वेदेव हैं। यहाँ स्नान के लिए आये हैं। माघ मास निकट आ गया है। आज से पाँचवें दिन माघ का स्नान आरम्भ हो जायेगा। आज ही 'पुत्रदा' नाम की एकादशी है, जो व्रत करनेवाले मनुष्यों को पुत्र देती है।

राजा ने कहा : विश्वेदेवगण ! यदि आप लोग प्रसन्न हैं तो मुझे पुत्र दीजिये।

मुनि बोले : राजन् ! आज 'पुत्रदा' नाम की एकादशी

काली मिर्च

भारत तथा भारतीय उपखंड के उष्ण व आर्द्र प्रदेशों में काली मिर्च पायी जाती है। फल तैयार होने के बाद बेल को धूप में सुखाकर काली मिर्च अलग कर ली जाती है। मसाले के रूप में इसका उपयोग सर्वत्र किया जाता है। इसे पानी में भिगोकर, ऊपर की छाल निकालकर 'सफेद मिर्च' बनायी जाती है। सफेद मिर्च में काली मिर्च की अपेक्षा तीखापन व गर्मी कम होती है।

'भावप्रकाश निघंटु' में लिखा है :

मरिचं कटुकं तीक्ष्णं दीपनं कफवातजित्।
उष्णं पित्तकरं रूक्षं श्वासशूलकृमीन्हरेत् ॥

'काली मिर्च तीखी, तीक्ष्ण, जठराग्नि प्रदीप्त करनेवाली, कफ तथा वात को नष्ट करनेवाली, उष्ण, पित्तकारक, रुक्ष और श्वासरोग तथा कृमि का नाश करनेवाली है।'

कच्ची एवं ताजी काली मिर्च मधुर, अल्प उष्ण, तीखी, भारी, अल्प तीक्ष्ण तथा कफ निकालनेवाली है लेकिन पित्तकारक नहीं है।

यह विषम ज्वर में गुणकारी औषधि के समान है। यह शरीर के समस्त स्रोतों से मल को निष्कासित करके शरीर की शुद्धि करती है। नेत्रज्योति और नाड़ीदौर्बल्य में काली मिर्च के सेवन से बहुत लाभ होता है। उदर-रोग, रुके हुए मासिकस्राव में, मूत्रावरोध में भी इसके सेवन से लाभ होता है। मंदाग्नि, अजीर्ण, यकृत-विकृति, अफरा, जुकाम, श्वासरोग व शीत ज्वर में इसका सेवन लाभदायी है।

यूनानी मत के अनुसार यह गरम और खुश्क होती है। अफरा, दाँत का दर्द और जहर का असर दूर करनेवाली है।

* औषधि-प्रयोग *

१. मंदाग्नि : काली मिर्च, सोंठ, जीरा, सेंधा नमक - ये सब १०-१० ग्राम की मात्रा में लें, फिर पीसकर मिला लें। यह मिश्रण भोजन के बाद २ ग्राम की मात्रा में पानी के साथ लेने से मंदाग्नि दूर होती है।

२. सूखी बवासीर : काली मिर्च २० ग्राम, जीरा १० ग्राम, मिश्री या शक्कर १५ ग्राम - इन तीनों को पीसकर मिला लें। १-१ चम्मच (लगभग ५ ग्राम) यह चूर्ण प्रतिदिन सुबह-शाम भोजन के बाद पानी के साथ लेने से बवासीर में लाभ होता है।

३. फुंसी : फुंसी होते ही यदि काली मिर्च को पानी में घिसकर उसका लेप फुंसी पर कर दें तो फुंसी बैठ जाती है। सूजन और वेदनायुक्त विकारों में भी यह लेप बहुत उपयुक्त है।

४. नेत्रज्योति : काली मिर्च का ३ ग्राम चूर्ण थोड़े-से घी या मक्खन के साथ मिलाकर प्रतिदिन सुबह-शाम नियमित रूप से खाने से आँखों की कमजोरी दूर होती है और नेत्रज्योति बढ़ती है।

काली मिर्च को पानी में घिसकर अंजनी (नेत्रों की पलकों के किनारे निकलनेवाली गुहेरी) पर लेप करने से लाभ होता है।

५. सिरदर्द : सुई की नोंक से एक काली मिर्च को छेदकर दिये की लौ से उसे जलायें। जब धुआँ निकलने लगे तो इस धुएँ को नाक से श्वास लेकर ऊपर तक चढ़ायें। इस प्रयोग से सिरदर्द में आराम होता है तथा हिचकी आनी

है। इसका व्रत बहुत विख्यात है। तुम आज इस उत्तम व्रत का पालन करो। महाराज ! भगवान केशव के प्रसाद से तुम्हें पुत्र अवश्य प्राप्त होगा।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : युधिष्ठिर ! इस प्रकार उन मुनियों के कहने से राजा ने उक्त उत्तम व्रत का पालन किया। महर्षियों के उपदेश के अनुसार विधिपूर्वक 'पुत्रदा एकादशी' का अनुष्ठान किया। फिर द्वादशी को पारण करके मुनियों के चरणों में बारंबार मस्तक झुकाकर राजा अपने घर आये। तदनन्तर रानी ने गर्भधारण किया। प्रसवकाल आने पर पुण्यकर्मा राजा को तेजस्वी पुत्र प्राप्त हुआ, जिसने अपने गुणों से पिता को संतुष्ट कर दिया। वह प्रजा का पालक हुआ।

इसलिए राजन् ! 'पुत्रदा' का उत्तम व्रत अवश्य करना चाहिए। मैंने लोगों के हित के लिए तुम्हारे सामने इसका वर्णन किया है। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर 'पुत्रदा एकादशी' का व्रत करते हैं, वे इस लोक में पुत्र पाकर मृत्यु के पश्चात् स्वर्गगामी होते हैं। इस माहात्म्य को पढ़ने और सुनने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है।

भी बंद हो जाती है।

काली मिर्च का चूर्ण सूँघने पर बार-बार छींक आती है, जिससे जुकाम से बंद नाक खुलती है और सिरदर्द मिट जाता है।

काली मिर्च को घी में घिसकर २ से ४ बूँद नाक में टपकाने से आधासीसी (माइग्रेन) का दर्द मिटता है।

६. कफ-खाँसी : काली मिर्च के चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटने से खाँसी में आराम होता है और अंदर जमा हुआ कफ निकल जाता है, जिससे श्वास-वेग और दमे के रोग में भी आराम मिलता है।

७. पेटदर्द : काली मिर्च के १ ग्राम चूर्ण को नींबू व अदरक के ५-५ ग्राम रस में मिलाकर सेवन करने से अथवा काली मिर्च में चुटकीभर भूना हुआ हींग मिलाकर लेने से पेटदर्द में लाभ होता है।

८. मलेरिया : काली मिर्च के ५ दाने, १ ग्राम अजवायन और १० ग्राम ताजी हरी गिलोय को १०० ग्राम पानी में उबालकर छान लें। इसे सुबह-शाम पीने से मलेरिया के ज्वर में लाभ होता है। मलेरिया में १ ग्राम काली मिर्च का चूर्ण और तुलसी के ३१ पत्तों का रस १ चम्मच शहद में मिलाकर लेने से लाभ होता है।

९. स्वरभंग : ८-१० काली मिर्च पानी में उबालकर छान लें, फिर उस पानी से गरारे करें। इससे स्वरभंग (गला बैठना), दंतशूल और कंठशूल में लाभ होता है। स्वरभंग में एक चुटकी काली मिर्च का चूर्ण घी में मिलाकर भोजन के बाद सेवन करने से भी लाभ होता है।

१०. बालों की सुरक्षा : काली मिर्च को प्याज व नमक से साथ पीसकर सिर के बालों में लगाने से दाद, खुजली के कारण झड़नेवाले बालों की सुरक्षा होती है।

११. उदरकृमि : काली मिर्च के १ ग्राम चूर्ण को मट्ठे (छाछ) के साथ सेवन करने से एक सप्ताह में उदरकृमि नष्ट होते हैं।

लोक कहावतों में रहस्य

प्राचीनकाल में जब आज की तरह चिकित्सक व चिकित्सालय नहीं थे, तब गाँवों में अनुभव पर आधारित सस्ते, सर्वसुलभ व अचूक आयुर्वेदिक नुस्खों द्वारा अनेक रोगों का सरलता से उपचार कर उनसे छुटकारा पाया जाता था। पीढ़ियों से आजमाये जानेवाले इन नुस्खों के आधार पर अनेक लोक कहावतों का प्रचलन था।

लोक कहावतें हमारे ग्रामीण अँचलों में बिखरी हुई वे अमूल्य धरोहर हैं, जिनकी प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है, जितनी अतीत-पूर्व में थी। यहाँ प्रस्तुत हैं कुछ ऐसी ही कहावतें :

आँखों के रोग : आजकल बहुत-से लोगों को दृष्टि-दुर्बलता की परेशानी है। नेत्ररोगों से बचाव और नेत्रज्योति बढ़ाने के संबंध में कहावत है :

मिट्टी के नवपात्र में त्रिफला रात में डारि।
सुबह सबेरे धोय के आँख रोग को टारि॥

अर्थात् रात को मिट्टी के नये बर्तन में त्रिफला को पानी में भिगो दें। इस पानी से सवेरे आँखों को धो लें।

नेत्रज्योति को तेज करने के संबंध में एक और कहावत है :

काली मिरच को पीसकर घी-बूरे संग खाय।
नैनरोग सब दूर हों गिद्ध दृष्टि हो जाय॥

अर्थात् काली मिर्च को महीन पीसकर घी और शक्कर के साथ खाने से आँखों की ज्योति गिद्ध पक्षी के समान हो जाती है।

आँखों की जलन और पीड़ा दूर करने के संबंध में :

भूनी फिटकरी लीजिये, जल गुलाब में घोल।
आँख जलन जाली मिटै, वैदन के ये बोल॥

अर्थात् भूनी हुई फिटकरी को गुलाबजल में घोलकर आँखों में डालने से आँखों की जलन और पीड़ा दूर हो जाती है - ऐसा वैद्य लोगों का कहना है।

अजयपाल के दूध में, घस कपूर जो नैन।
फुल्ली मिटै छोटी बडी, परि जात है चैन॥

अर्थात् बरगद के दूध में कपूर घिसकर आँखों की फूली पर लगाने से फूली मिट जाती है और आँखों को आराम मिलता है।

नाक-कान के रोग : कान में पीड़ा होने पर बड़ा कष्ट होता है। ऐसे दर्द में सुदर्शन के पत्ते का रस गर्म करके कान में डालने को कहा गया है।

अर्क सुदर्शन पात का गर्म कान में डाल।
कानन के पीर को मेटत है तत्काल॥

सुनने की शक्ति सौ वर्ष तक बनी रहे, इसके लिए कहा है :

सौ बरस सुनना चाहो, कड़वा तेल कान में डारो।

इसी प्रकार नाक के सभी रोगों से छुटकारे के लिए

सरसों का तेल रोज नाक में डालने को कहा है :

कड़वा तेल नाक लगावे,
ताको नाक रोग मिट जावे ।

दाँतों के रोग : दाँतों की टीस और उन पर जमी मैल को दूर करने के लिए महीन नमक को सरसों के तेल में मिलाकर नित्य मलने को कहा गया है :

नमक महीन मिलाइये,
अरु सरसों का तेल ।
नित्य मलै टीसन मिटै,
छूट जात सब मैल ॥

काली खाँसी : काली खाँसी हो जाने पर बड़ा कष्ट होता है। इससे छुटकारे के लिए सरल उपाय है :

काली मिरच महीन पिसावे, आक पुष्प और शहद मिलावे।
चटनी प्रथमहि खाय, सूखी खाँसी झट मिट जाय ॥

अर्थात् काली मिर्च और आक (मदार) के फूल की चटनी शहद में मिलाकर भोजन से पहले सेवन करने से काली खाँसी दूर हो जाती है।

अनिद्रा-रोग : नींद न आने से रात करवट बदलते बीतती हो तो -

गुड़ के संग मिलाय के पीपरामूल जो खाय।
कहे भड्डरी भायजी, गहरी निंदिया आय ॥

अर्थात् पीपलामूल को गुड़ में मिलाकर खाने से गहरी नींद आती है।

अश्वगंधा

अश्वगंधा एक बलवर्धक व पुष्टिदायक श्रेष्ठ रसायन है । यह मधुर व स्निग्ध होने के कारण वात का शमन करनेवाला एवं रस-रक्तादि सप्त धातुओं का पोषण करनेवाला है। इससे विशेषतः मांस व शुक्रधातु की वृद्धि होती है।

यह शक्तिवर्धक, वीर्यवर्धक एवं स्नायु व मांसपेशियों को ताकत देनेवाला तथा कद बढ़ानेवाला एक पौष्टिक रसायन है। धातु की कमजोरी, शारीरिक-मानसिक कमजोरी आदि के लिए यह रामबाण औषधि है।

मात्रा : ५ वर्ष की उम्र तक २ ग्राम, ५ से १५ वर्ष तक ५ ग्राम एवं १५ वर्ष से अधिक उम्र के व्यक्ति प्रतिदिन १० ग्राम तक ले सकते हैं। खाली पेट मिश्री मिले हुए गुनगुने दूध के साथ लें। आँवले के १० से ४० मि.ली. रस के साथ लेने से विशेष शक्ति आती है।

सभी संत श्री आसारामजी आश्रमों, श्री योग वेदांत सेवा समितियों एवं साधक-परिवारों के सेवा-केन्द्रों पर उपलब्ध।

चमत्कारी फूल !

२-३ माह पूर्व मेरी पत्नी अचानक बीमार हो गयी। डॉक्टरों से पता चला कि उसके हृदय का एक वाल्व खत्म हो चुका है। बिना ऑपरेशन के इलाज संभव नहीं। ऑपरेशन भी तुरंत होना चाहिए, जिसमें काफी खर्च भी था और खतरा भी। इस विपदा की घड़ी में केवल बापूजी का सहारा ही नजर आ रहा था। मैं सुबह पूजागृह में गया, बापूजी के चित्र के सामने बैठकर सारी बातें की और बहुत रोया। जब मैंने आँखें ऊपर उठायी तो देखा कि बापूजी के चित्र में से सफेद डंडीवाला फूल निकला हुआ है ! मैं काँप उठा और जोर-जोर से रोने लगा क्योंकि अभी तो मैंने चित्र पोंछा था। पत्नी व बच्चों को बुलाया। वे सब भी पूज्य गुरुदेव का यह चमत्कारिक आशीर्वाद पाकर खुशी से रोने लगे। लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी।

जो लोग हमारी आस्था की आलोचना करते थे, वे भी इस दृश्य को देखकर दीक्षा लेने को तैयार हो गये। मैंने फोटोग्राफर से फूल की फोटो उतरवायी व पत्नी को लेकर निवाई (राज.) पहुँच गया, जहाँ पूज्यश्री का सत्संग चल रहा था। पत्नी ने अपनी बीमारी के बारे में पूज्य बापू को बताया तो बापूजी ने कहा : ''ऑपरेशन की कोई आवश्यकता नहीं है, ऐसे ही ठीक हो जायेगा। बस, गोझरण का सेवन करो।''

इसके बाद बापूजी ने टार्च की रोशनी मेरी पत्नी पर डाली। उसने बताया कि 'जब बापूजी ने मेरे पर टार्च की रोशनी डाली तो मुझे एक झटका-सा लगा और इसीके साथ मुझे लगा जैसे कोई स्प्रिंग-सा मेरे हार्ट से निकल गया हो और एकदम रक्त संचार होने लग गया !'

दूसरे दिन बापूजी ने मुझे पास बुलाकर प्रसाद दिया। इतने में घर से बेटे का फोन आया कि उस फोटो में से दो फूल और निकल आये हैं ! जबसे हम बापूजी का आशीर्वाद प्राप्त करके आये हैं, मेरी पत्नी एकदम स्वस्थ है। इसके साथ ही उन फूलों की संख्या ४ हो चुकी है !

- पवन कुमार गोयल, लुधियाना (पंजाब).
दूरभाष : ९८७२४-८२२२९.

सरसों का तेल रोज नाक में डालने को कहा है :

कड़वा तेल नाक लगावे,
ताको नाक रोग मिट जावे ।

दाँतों के रोग : दाँतों की टीस और उन पर जमी मैल को दूर करने के लिए महीन नमक को सरसों के तेल में मिलाकर नित्य मलने को कहा गया है :

नमक महीन मिलाइये,
अरु सरसों का तेल ।
नित्य मलै टीसन मिटै,
छूट जात सब मैल ॥

काली खाँसी : काली खाँसी हो जाने पर बड़ा कष्ट होता है। इससे छुटकारे के लिए सरल उपाय है :

काली मिरच महीन पिसावे, आक पुष्प और शहद मिलावे ।
चटनी प्रथमहि खाय, सूखी खाँसी झट मिट जाय ॥

अर्थात् काली मिर्च और आक (मदार) के फूल की चटनी शहद में मिलाकर भोजन से पहले सेवन करने से काली खाँसी दूर हो जाती है।

अनिद्रा-रोग : नींद न आने से रात करवट बदलते बीतती हो तो -

गुड़ के संग मिलाय के पीपरामूल जो खाय।
कहे भड्डरी भायजी, गहरी निंदिया आय ॥

अर्थात् पीपलामूल को गुड़ में मिलाकर खाने से गहरी नींद आती है।

अश्वगंधा

अश्वगंधा एक बलवर्धक व पुष्टिदायक श्रेष्ठ रसायन है । यह मधुर व स्निग्ध होने के कारण वात का शमन करनेवाला एवं रस-रक्तादि सप्त धातुओं का पोषण करनेवाला है। इससे विशेषतः मांस व शुक्रधातु की वृद्धि होती है।

यह शक्तिवर्धक, वीर्यवर्धक एवं स्नायु व मांसपेशियों को ताकत देनेवाला तथा कद बढ़ानेवाला एक पौष्टिक रसायन है। धातु की कमजोरी, शारीरिक-मानसिक कमजोरी आदि के लिए यह रामबाण औषधि है।

मात्रा : ५ वर्ष की उम्र तक २ ग्राम, ५ से १५ वर्ष तक ५ ग्राम एवं १५ वर्ष से अधिक उम्र के व्यक्ति प्रतिदिन १० ग्राम तक ले सकते हैं। खाली पेट मिश्री मिले हुए गुनगुने दूध के साथ लें। आँवले के १० से ४० मि.ली. रस के साथ लेने से विशेष शक्ति आती है।

सभी संत श्री आसारामजी आश्रमों, श्री योग वेदांत सेवा समितियों एवं साधक-परिवारों के सेवा-केन्द्रों पर उपलब्ध ।

चमत्कारी फूल !

२-३ माह पूर्व मेरी पत्नी अचानक बीमार हो गयी। डॉक्टरों से पता चला कि उसके हृदय का एक वाल्व खत्म हो चुका है। बिना ऑपरेशन के इलाज संभव नहीं। ऑपरेशन भी तुरंत होना चाहिए, जिसमें काफी खर्च भी था और खतरा भी। इस विपदा की घड़ी में केवल बापूजी का सहारा ही नजर आ रहा था। मैं सुबह पूजागृह में गया, बापूजी के चित्र के सामने बैठकर सारी बातें की और बहुत रोया। जब मैंने आँखें ऊपर उठायी तो देखा कि बापूजी के चित्र में से सफेद डंडीवाला फूल निकला हुआ है ! मैं काँप उठा और जोर-जोर से रोने लगा क्योंकि अभी तो मैंने चित्र पोंछा था। पत्नी व बच्चों को बुलाया। वे सब भी पूज्य गुरुदेव का यह चमत्कारिक आशीर्वाद पाकर खुशी से रोने लगे। लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी।

जो लोग हमारी आस्था की आलोचना करते थे, वे भी इस दृश्य को देखकर दीक्षा लेने को तैयार हो गये। मैंने फोटोग्राफर से फूल की फोटो उतरवायी व पत्नी को लेकर निवाई (राज.) पहुँच गया, जहाँ पूज्यश्री का सत्संग चल रहा था। पत्नी ने अपनी बीमारी के बारे में पूज्य बापू को बताया तो बापूजी ने कहा : ''ऑपरेशन की कोई आवश्यकता नहीं है, ऐसे ही ठीक हो जायेगा। बस, गोझरण का सेवन करो।''

इसके बाद बापूजी ने टार्च की रोशनी मेरी पत्नी पर डाली। उसने बताया कि 'जब बापूजी ने मेरे पर टार्च की रोशनी डाली तो मुझे एक झटका-सा लगा और इसीके साथ मुझे लगा जैसे कोई स्प्रिंग-सा मेरे हार्ट से निकल गया हो और एकदम रक्त संचार होने लग गया !'

दूसरे दिन बापूजी ने मुझे पास बुलाकर प्रसाद दिया। इतने में घर से बेटे का फोन आया कि उस फोटो में से दो फूल और निकल आये हैं ! जबसे हम बापूजी का आशीर्वाद प्राप्त करके आये हैं, मेरी पत्नी एकदम स्वस्थ है। इसके साथ ही उन फूलों की संख्या ४ हो चुकी है !

- पवन कुमार गोयल, लुधियाना (पंजाब).
दूरभाष : ९८७२४-८२२२९.

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

मोलेथा (गुज.) में १९ अक्टूबर को सत्संग की पूर्णाहुति कर पूज्य बापूजी एकांत-सेवन हेतु गोधरा आश्रम (गुज.) पहुँचे । यहाँ पूज्यश्री का २३ अक्टूबर तक निवास रहा । २३ अक्टूबर की दोपहर को गोधरा आश्रम में सत्संग हुआ।

अमझेरा (म.प्र.) : 'महाभारत' में आता है कि भगवान श्रीकृष्ण को ध्यानमग्न देखकर धर्मराज युधिष्ठिर को आश्चर्य हुआ कि जिन भगवान श्रीकृष्ण को सारी दुनिया याद करती है, वे स्वयं किसका ध्यान कर रहे हैं ?

युधिष्ठिर ने भगवान के सामने अपनी जिज्ञासा रखी। भगवान बोले : शरशैया पर लेटे हुए मेरे परम भक्त भीष्म मुझे याद कर रहे हैं । मैं उन्हींको याद कर रहा था, उन्हींके ध्यान में तल्लीन हो गया था । मैं अपने प्रेमी भक्तों के अधीन हूँ।

इसी प्रसंग की याद ताजा हो आयी जब कई बड़ी-बड़ी समितियाँ पूज्य बापूजी का सत्संग-कार्यक्रम पाने हेतु प्रार्थनाएँ कर रही थीं और भक्तवत्सल पूज्य बापूजी सत्संग व भंडारे का कार्यक्रम देने हेतु अमझेरावासियों को याद कर रहे थे।

१५६ से अधिक देशों के लोग पूज्य बापूजी के सत्संग का टी.वी. चैनलों द्वारा लाभ लेते हैं और विडियो सी.डी., कैसेट्स, सत्साहित्य आदि के माध्यम से तो समस्त विश्व के लोग पूज्य बापूजी के सत्संग का अमृतपान करते हैं, उन्हें अपने हृदय में बसाते हैं, उनको याद करते हैं और पूज्य बापूजी किन्हें याद करते हैं ?

अमझेरा जैसे पिछड़े क्षेत्रों के गरीब-गुरबों, अभावग्रस्तों एवं आदिवासियों को । वैसे ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष सभीकी उन्नति, सभीका कल्याण करते हैं परंतु जो गरीब, अनाथ हैं, सामाजिक रूप से पिछड़े हैं और इसी वजह से भगवद्रस, भगवद्ज्ञान से वंचित हैं उनकी याद उन्हें विशेषरूप से आती रहती है।

अमझेरा के भक्तों ने पूज्य बापूजी के आगमन से पूर्व ही उनकी कुटिया का रास्ता दीपों से सुसज्जित कर दिया, जो उनके हृदयों में प्रज्वलित श्रद्धादीपों का प्रतीक था । पूज्य बापूजी ने अमझेरावासियों को उनकी स्थानीय भाषा में तत्त्वज्ञान की सार बातों से संपुटित हरिकथामृत का पान कराया और उनके हृदयों में ज्ञान, भक्ति व समता का प्रकाश किया जो बापूजी की अहैतुकी करुणा का प्रतीक था। पूज्यश्री के सत्संगामृत में आया :

''मनुष्य में अथाह योग्यता छुपी है लेकिन बेचारे निगुरे आदमी को इसकी खबर ही नहीं है। वह इधर-उधर की बातों में ही अपने समय-शक्ति का अपव्यय करता रहता है।

आते बाता जाते बाता चलते बाता खाते बाता।
इन बातों में सार नहीं, जम मारेगो लाता ॥

बातें काहे करो, भगवान के नाम का स्मरण करो । अपने से पूछो कि 'कमला, मोहन, छोगाजी, चेलाजी या फोंदाजी यह तो शरीर का नाम है, मैं कौन हूँ ? ऐसी कौन-सी चीज है जिसकी सत्ता से आँख देखती है ? मन में दुःख आता है, चला जाता है - इसको कौन देखता है ? मृत्यु आयेगी व सब छूट जायेगा, अब और कब तक चाहिए-चाहिए करोगे ? ऐसी कौन-सी चीज है जहाँ मृत्यु की दाल नहीं गलती ?' इस प्रकार विचार करना चाहिए।''

२४ अक्टूबर को सत्संग के पश्चात् विशाल भंडारे का आयोजन हुआ जिसमें चावल, दाल-सब्जी आदि के साथ मधुर कणा-प्रसाद, बूँदी व फलों का वितरण किया गया । भंडारे में वस्त्रों के साथ कम्बल, टोपी आदि का वितरण कर आर्थिक सहायता भी प्रदान की गयी।

इन्दौर (म.प्र.) : २४ अक्टूबर की शाम को पूज्यश्री का इन्दौर आश्रम में आगमन हुआ । यहाँ वे एकांतवास के लिए पधारे थे । यहाँ की समिति व भक्तों ने अनुशासन में रहकर शांत माहौल बनाये रखा । पूज्यश्री आत्मा की गहराई में मस्त होकर, ध्यान-समाधि के क्षणों में चैतन्य-सागर के बिलोये जाने से उभरे आत्म-अमृतकुंभ को लेकर प्रतिदिन शाम को भक्तों के बीच आते व भक्त-हृदयों की प्यालियों में उड़ेल देते।

यहाँ सत्संग में शब्दों की अधिकता नहीं थी बल्कि प्लुत् भगवन्नामोच्चारण, मानसिक जप, ध्यान की अधिकता थी । भक्तों का कहना था कि पूज्यश्री का ऐसा सान्निध्य हमारे और परमात्मा के बीच सुंदर संवाद साधनेवाला अत्युत्तम माध्यम है।

भोपाल (म.प्र.) : एक वर्ष में तीसरी बार सत्संग कार्यक्रम और इस बार दीपावली की पूर्व संध्याओं में ! यह सौभाग्य प्राप्त हुआ भोजनगरी-भोपाल वासियों को। २८ और २९ अक्टूबर को भोपाल में हुए पूज्य बापूजी के सत्संग-कार्यक्रम ने भोजनगरवासियों के दिल में भक्ति और प्रेम के दीये दीपोत्सव से पहले ही जला दिये।

दीपावली के पूर्व बापूजी का आगमन भोपालवासियों के लिए श्रीरामजी के अयोध्या-आगमन से कम नहीं था। मात्र तीन दिन पूर्व सत्संग-कार्यक्रम जाहिर हुआ था, फिर

भी खबर वायु-वेग से पूरे क्षेत्र में फैल गयी और बड़ी भारी संख्या में उपस्थित रहकर यहाँ के पुण्यात्माओं ने सत्संग-लाभ लिया। नूतन विक्रम संवत् को सुखमय, आनंदमय एवं समत्व योग संपन्न बनाने की सुंदर युक्तियाँ व प्रयोग भक्तों ने पूज्यश्री से प्राप्त किये।

रजोकरी (दिल्ली) : २९ अक्टूबर की रात्रि में पूज्यश्री दिल्ली स्थित रजोकरी आश्रम में पहुँचे और ३० अक्टूबर की सुबह दिल्लीवासियों को सत्संग-लाभ प्राप्त हुआ।

दीपावली महोत्सव, अमदावाद आश्रम : पूज्य गुरुदेव ३० अक्टूबर की दोपहर में अमदावाद पहुँचे। धन त्रयोदशी की पावन संध्या में आश्रमवासी एवं अन्य साधकों ने पूज्य गुरुदेव के आश्रम में प्रवेश करते ही सैकड़ों प्रज्वलित दीपकों द्वारा उनका स्वागत किया।

लोग दीपावली पर्व को अपने स्नेहियों, रिश्तेदारों आदि से मिलने और खुशियाँ बाँटने के एक अवसर के रूप में मनाते हैं परंतु पूज्य बापूजी के शिष्यों को पूज्यश्री के सान्निध्य में ही दीपावली मनाना अच्छा लगता है क्योंकि 'श्रीगुरुगीता' के निम्न श्लोक का उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया है :

शरीरमिन्द्रियं प्राणञ्चार्थः स्वजनबन्धुताम् ।
मातृकुलं पितृकुलं गुरुरेव न संशयः ॥

'शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण, धन, स्वजन, बंधु-बांधव, माता का कुल, पिता का कुल - ये सब गुरुदेव ही हैं। इसमें संशय नहीं है।' (१५१)

पूज्य गुरुदेव ने दीपावली-संदेश देते हुए कहा : ''भगवत्प्रेम का अमृत वास्तविक मधुरता, वास्तविक दीपावली को प्रकट करनेवाला है। बाहर के दीये तो जलाओ लेकिन अब अंदर की भी ज्योत जगाओ।

बाहर तो उजाला हो रहा है लेकिन अंतर में शांति नहीं, भगवद्-दीया नहीं, भगवत्प्रकाश नहीं, भगवन्माधुर्य नहीं तो वह उजाला किस काम का ? चहुँओर दीये जगमगायें गली-कूचे में, मकान-दुकान में, मानों इंद्रपुरी बन गयी परंतु हृदय को अगर भगवत्पुरी नहीं बनाया तो यह इंद्रपुरी भी कब तक ? धनभागी हैं वे जो हृदय को भगवत्पुरी बना रहे हैं...''

इस वर्ष भी नूतन वर्ष के प्रथम दिन भक्तों को पुण्यमय वस्तुओं के दर्शन का लाभ मिले, इस उद्देश्य से आश्रम के प्रवेशद्वार के निकट गौमाता, पाँचों गौरस, सोना, चाँदी, सद्ग्रंथ, मंगल कलश आदि रखे गये थे।

ओढव (अमदावाद, गुज.) : ओढववासियों की बहुत वर्षों की प्रार्थनाएँ फलीभूत हुईं और ५ से ७ नवम्बर तक उन्हें पूज्य बापूजी के सत्संग का लाभ प्राप्त हुआ।

पूज्यश्री के सत्संग में आया : 'ये बुरा है' - ऐसा अपने हृदय में द्वेष की गाँठ मत बाँधो। उसको बुरा मानो नहीं, उसको बुरा कहो नहीं, उसका बुरा चाहो नहीं, उसका बुरा करो नहीं तो तुम्हारा हृदय पवित्र हो जायेगा। हम द्वेषबुद्धि से किसीको याद करके अपना हृदय क्यों जलायें ? जहर जिस बोतल में होता है उसको नहीं बिगाड़ता लेकिन जिस हृदय में द्वेष होता है उस हृदय का ही सत्यानाश करता है।

इस त्रिदिवसीय कार्यक्रम में प्रतिदिन गरीब परिवारों को च्यवनप्राश, मिठाई, बर्तन, ब्रह्मचर्यरक्षक बूटी आदि विभिन्न वस्तुएँ व आर्थिक सहायता प्रदान की गयी। करीब ५४०० परिवारों ने इस प्रसादी का लाभ लिया।

७ नवम्बर को सुबह ७-३० बजे अमदावाद आश्रम से पूज्य बापूजी ने शिकागो (अमेरिका) में सत्संग के लिए इकट्ठे हुए भक्तों को विडियो कॉन्फ्रेन्स द्वारा सत्संग दिया तथा साधना में आगे बढ़ने व स्वस्थ रहने के उपाय भी बताये। करीब डेढ़ घंटे तक पूज्यश्री की अमृतवाणी का लाभ लेकर शिकागोवासी शिष्य-समुदाय धन्य हुआ।

मौन साधना शिविर, अमदावाद आश्रम : १३ से १५ नवम्बर तक संपन्न हुए इस शिविर में चुने हुए जिज्ञासु साधकों को ही प्रवेश दिया गया। इस शिविर में पुराने मंत्रदीक्षित साधकों के लिए ज्ञान-ध्यान की ऊँचाइयों व ध्यान के प्रयोगों का मानों भंडार ही खुल गया था।

पूज्य बापूजी ने कर्म, भक्ति, सांख्य, सूफी आदि विभिन्न मतों पर सूक्ष्म विवेचन किया : ''चाहे सूफीवाद हो, भक्तिवाद हो या कर्मवाद हो सभीका उद्देश्य मनुष्य का दुःख मिटाना और उसे सुख में टिकाना है। कर्मवाद कहता है कि ऐसे-ऐसे कर्म करो जिससे दुःख न मिले, सुख ही मिले लेकिन कर्म के द्वारा उपजा सुख भी टिकेगा नहीं। कर्म कराता है, उपासना भाव का भोग दिखाती है, सांख्य छुड़वाता है परंतु ब्रह्मविद्या कहती है कि अपने को देह और मन-बुद्धि के साथ जोड़कर परिच्छिन्न मत मानो। अपने को ब्रह्म जानकर अभी पूर्णता का अनुभव कर लो।''

पूरा प्रभु आराधिआ पूरा जा का नाम॥
नानक पूरा पाइआ पूरे के गुन गाउ ॥

१५ नवम्बर अर्थात् देवदिवाली, कार्तिक पूर्णिमा व नानक जयंती के दिन पूनम दर्शनोत्सव इस बार ३ स्थानों पर संपन्न हुआ - गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश व आस-पास के लोगों के लिए सुबह अमदावाद आश्रम में तो

दिल्ली व निकटस्थ प्रांतों के पूनम व्रतधारियों के लिए दोपहर को रजोकरी आश्रम, दिल्ली में और पंजाब के भक्तों के लिए शाम को अमृतसर में।

इस पर्वयुग्म के सुअवसर पर लोकलाड़ले परम पूज्य बापूजी को अपने बीच पाकर श्रद्धालु भक्त झूम उठे।

१५ नवम्बर की शाम से १७ नवम्बर की दोपहर तक अमृतसर को झुमाने के बाद १७ नवम्बर की शाम से १८ नवम्बर तक फिरोजपुर (पंजाब) में सत्संग-कार्यक्रम संपन्न हुआ। पंजाब, राजस्थान, हरियाणा में आयोजित हरेक सत्संग में पूज्यश्री ने लोगों से व्यसन छुड़ाने का मानो एक अभियान ही छेड़ रखा था। बापूजी ने दक्षिणा के रूप में लोगों से पान-मसाला, गुटका, धूम्रपान, मद्यपान व हानिकारक सौन्दर्य-प्रसाधनों के बहिष्कार का संकल्प कराने के साथ उन्हें भगवद्रसमय जीवन जीने की प्रेरणा देकर भगवद्व्यसनी बना दिया।

७ वर्ष के लंबे अंतराल के बाद १८-१९ नवम्बर को श्रीगंगानगर (राज.) में पूज्यश्री का पदार्पण हुआ। वहाँ ज्ञानभक्ति की पावन गंगा में अवगाहन कराते हुए पूज्यश्री ने मानव के वास्तविक स्वरूप को सत्-चित्-आनंद स्वरूप बताया और कहा : ''यदि मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को जान ले तो उसके जीवन की सारी समस्याओं का निराकरण हो जायेगा।''

ब्रह्मज्ञान की सत्संग-वर्षा के साथ ही प्रातःस्मरणीय बापूजी ने देवमानव हास्य व हरिनाम संकीर्तन से लोगों के दिलों के साथ ही वातावरण में दिव्यामृत रस घोल दिया।

परम पूज्य बापूजी के दर्शन व आत्मसुधा से परिपूर्ण अमृतवाणी का रसपान करने को आतुर फाजिल्का (पंजाब) के श्रद्धालुओं के इंतजार की घड़ियाँ २१ नवम्बर को समाप्त हुईं। १-१ दिन सद्गुरुदेव के आने की बाट जोह रही समिति को २१-२२ नवम्बर का समय मिला। ९ वर्ष ३ दिन की इंतजारी-बेकरारी की घड़ियों का अंत हुआ, लोकलाड़ले संत शिरोमणि के शुभागमन से स्थानीय समिति व श्रद्धालुओं में आनंद की लहर छा गयी और वातावरण गूँज उठा कि **बापूजी, तोरो सत्संग को बीत गये दिन ३, ९ साल; अब आ गये इस साल...**

२३-२४ नवम्बर को बठिंडा (पंजाब) एवं २५ नवम्बर को सिरसा (हरि.) में ज्ञानगंगा बहाने के बाद पूज्यश्री हिसार पहुँचे, जहाँ २६-२७ नवम्बर को ज्ञान-भक्तियोग की वर्षा हुई।

२७ नवम्बर को हिसार (हरि.) में सत्संग की पूर्णाहुति कर पूज्यश्री नवनिर्मित हांसी आश्रम (हरि.) पहुँचे। पूज्यश्री के पदार्पण व सत्संग के पश्चात् अगले दिन श्री सुरेशानंदजी व आश्रम की साध्वी रेखा बहन के प्रवचन भी संपन्न हुए। इसी रोज बापूजी देर रात को रोहतक आश्रम (हरि.) पहुँचे, जहाँ बड़ी संख्या में शिष्य-समुदाय सद्गुरुदेव के दर्शन की बाट जोह रहे थे। वहाँ भी करीब एक घंटा सत्संग चला।

इस तरह इस माह सत्संग का सफर कार्तिक पूर्णिमा १५ नवम्बर को एक ही दिन ३ स्थानों अमदावाद, दिल्ली और अमृतसर से प्रारंभ होकर २७ नवम्बर को पुनः ३ स्थानों हिसार, हांसी और रोहतक में सत्संग के साथ संपन्न हुआ। ये कोई पूर्व आयोजन नहीं थे, सहज में ही हुए।

अब कुछ समय एकांतवास रहेगा।
कोई भी समितिवाले कार्यक्रम के लिए
आने का कष्ट न करें। **- पूज्य बापूजी**

(पृष्ठ क्र. २५ का शेष)

दूरी नहीं है। उपर्युक्त प्रकार से सब तरह की इच्छाएँ मिट जाने पर योग एवं बोध की प्राप्ति हो जाती है, तब भगवत्प्रेम का प्राकट्य और भगवान का सान्निध्य स्वतः ही, बिना किसी प्रयत्न के अपने-आप प्राप्त होता है।

जीव की सबसे बड़ी भूल यही है कि वह अपनी स्वाभाविक जानकारी का आदर नहीं करता, उसकी अवहेलना करके उसके विरुद्ध आचरण करता है। इस भूल को साधक मिटा सके तो भगवान और उनके प्रेम की प्राप्ति में विलम्ब न हो। इसका सम्बंध वर्तमान से है। इसे भविष्य पर छोड़ना ही प्रमाद करना है।

शास्त्रों में जो यह कहा गया है कि साधन करते-करते कालान्तर में चित्त की शुद्धि और उसका परिणाम योग, बोध एवं प्रभुप्रेम की प्राप्ति होती है, यह कहना केवल उसी अंश में ठीक है कि साधक कहीं सफलता में विलम्ब देखकर निराश न हो जाय। वास्तव में विलम्ब का कारण है अपनी जानकारी का अनादर करना, उसके बाद का सारा काम तो भगवान की अहैतुकी कृपा से अपने-आप पहले से ही बना रहता है। उसके लिए प्रयत्न अपेक्षित नहीं है। जानकारी के आदर का परिणाम है - पूर्ण वैराग्य। वैराग्य की पूर्णता ही योग तथा बोध है। अबोध और भोग का हेतु राग ही है। बोध की पूर्णता में ही प्रेम निहित है।

'स्कंद पुराण' में नारदजी घोषणा करते हैं : श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत्। अर्थात् श्रद्धा ही स्वर्ग और मोक्ष है तथा श्रद्धा ही यह सम्पूर्ण जगत है। - बापूजी के सत्संग में आते ही हरेक हृदय की श्रद्धा भगवद्श्रद्धा में परिणत हो जाती है। - सिरसा (हरि.) के सत्संग का दृश्य।

९ वर्ष ३ दिन की इंतजारी, बेकरारी की घड़ियों का अंत हुआ और
पूज्य बापूजी के दर्शन-सत्संग का लाभ मिला फाजिल्का (पंजाब) वासियों को।

लोकसंत बापूजी सत्संग में आत्मज्ञान का सुधारस व
प्रभुनाम-कीर्तन की संजीवनी बूटी हरिकथामृत के कुंभ में
घोल-घोलकर पिलाते हैं, जिसका पान करते हुए श्रीगंगानगर (राज.) के सत्संगी।

सत्संग–श्रवण में तल्लीन ओढव, अमदावाद (गुज.) वासी।
सत्संग के पश्चात् पूज्य बापूजी की ओर से ५४०० गरीब परिवारों को च्यवनप्राश आदि जीवनोपयोगी वस्तुओं के वितरण का कार्यक्रम आयोजित किया गया।

शबरी की प्रतीक्षा फली प्रभु श्रीराम दर पर आये। हम भक्तों की प्रतीक्षा का फल साँईं आसाराम पधारे ॥ – फिरोजपुर (पंजाब)

शुभ दीवाली तभी मानिये, जब दीया जले गुरुज्ञान का।
पूज्य बापूजी के दीदार व अमृतवचन पाकर भक्तों के अंतरदीप भी जगमगाये। – दीपावली पर्व, अमदावाद आश्रम।

दुनिया तो बापूजी को याद करती है और बापूजी किन्हें विशेष याद करते हैं ?
पिछड़े क्षेत्रों के गरीबों, अभावग्रस्तों व आदिवासियों को। – अमझेरा (म.प्र.) के भंडारे का दृश्य।

POSTAL REGISTRATION NO. GAMC-1132. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207(DATE OF ISSUE 22-5-2003 & VALID UP TO 31-12-2005). POSTING FROM AHMEDABAD 2-15 OF EVERY MONTH. ✲ MBI PATRIKA CHANNEL, MUMBAI-101, WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. NW-9 REGD NO. TECH/47-833/2003-05 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH. ✲ FOREIGN POSTING 5 & 6 OF EVERY MONTH FROM AIRPORT PO. - 400099. ✲ DELHI REGD. NO. DL-11513/2003-05 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2003-05 POSTING FROM DELHI 5-6 OF EVERY MONTH.